अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, अंक-03, 16-30 सितंबर, 2018

नोआखाली विशेषांक

एकला चलो रे!

''मैं यह समझता हूं, जानता हूं, इसलिए यहां 'नोआखाली' में पड़ा हूं। यहां से मुझे बुलाना मत। मैं कायर बनकर भागूं, तो मेरा दुर्भाग्य। अभी तक तो मैं हिन्दुस्तान के ऐसे लक्षण नहीं देखता। मुझे तो यहां करना है या मरना है।''

''मेरी कल्पना का सत्याग्रह कमजोरों का शस्त्र है या सचमुच बलवानों का शस्त्र है? या तो मैं दूसरी बात सिद्ध कर दिखाऊंगा या इस प्रयत्न में अपने प्राण न्यौछावर कर दूंगा। यही मेरी साधना है। सेवाग्राम आश्रम के आश्रमवासियों को मेरे जल्दी लौट आने की तमाम आशाएं छोड़ देनी चाहिए।'' - (सरदार पटेल/आश्रमवासियों को लिखे पत्र से) -गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, अंक : 03, 16-30 सितम्बर, 2018

संपादक
अशोक मोती
फोन : 0542-2440223

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह   भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. गांधी की रचनात्मक अहिंसा का... 2
2. मेरे दिल को चीरकर देखें... 3
3. सबसे बड़े क्रांतिकारी गांधीजी... 6
4. युगपुरुष गांधी... 7
5. एकला चलो रे!... 8
6. जिसे तोड़ा उसे जोड़ो... 15
7. उपन्यास - 'बा'... 18
8. चम्पारण सत्याग्रह का राष्ट्रव्यापी... 19
9. रविन्द्रनाथ की दो कविताएं... 20

संपादकीय

गांधी की रचनात्मक अहिंसा का पहला प्रयोग क्षेत्र नोआखाली

गांधी की रचनात्मक-अहिंसा का प्रयोग-क्षेत्र था नोआखाली, जिस दौरान गांधी ने न केवल पूरे देश बल्कि पूरी दुनिया को एक संदेश देने की कोशिश की। देश अपनी आजादी की खुशियां मना रहा था, लेकिन गांधी बंगाल और नोआखाली, (आज बांग्लादेश) पूर्वी बंगाल के गांव-गांव की पैदल यात्रा कर रहे थे, पगडंडियों पर पड़े मैले को सूखी पत्तियों से हटाते चल रहे थे। नोआखाली में गांधी के सामने प्रश्न यह था कि जिनकी नैतिक हिम्मत टूट गयी थी, उनके लिए जीवन का नया आधार कैसे गढ़ा जाय और जो धर्मान्धता, धार्मिक कट्टरता उपद्रवों का मूल कारण था, वह विष कैसे उतारा जाय।

अंततः साम्प्रदायिक समस्या को हल करने की गांधी की पद्धति अलौकिक सिद्ध हुई। वहां जो शांति स्थापित हुई वह थोपी हुई शांति नहीं थी। अपितु हृदय में उत्पन्न की गयी शांति थी। श्रद्धा और प्रार्थना उनके कार्य के साधन और सत्य के शोध के हथियार थे। प्रार्थना को गांधी हृदय की खोज, नम्रता की पुकार और आत्मशुद्धि का आह्वान मानते थे। इसलिए गांधी की शांति कभी भंग नहीं हुई, चाहे उनके सामने राजनीतिक क्षितिज पर निराशा की छाया क्यों न छाई रही हो। गांधी द्वारा प्रतिपादित प्रार्थनाशास्त्र के अनुसार नोआखाली में आयोजित सर्वजातीय सामूहिक सार्वजनिक प्रार्थना, जिसमें सब लोग शरीक होते थे, एक प्रकार की शिक्षा थी, जिसका उपयोग दंगों में शिकार हुए लोगों में ईश्वर के प्रति सजीव श्रद्धा से उत्पन्न होने वाली दृढ़ता पैदा करने में और अत्याचार करने वालों को सहिष्णुता, न्याय परायणता तथा मातृभाव का पाठ पढ़ाने में हो रहा था—एक साथ भोजन, एक साथ प्रार्थना, आतिथ्य मुस्लिम परिवार में।

गांधी गोआलंदो से स्टीमर द्वारा 100 मील की नदी-यात्रा कर चांदपुर पहुंचे थे, जहां से रेल द्वारा नोआखाली पहुंचे थे।

2 जनवरी 1946 को नोआखाली के मध्य भाग श्रीरामपुर से शुरू होकर गांधी की यात्रा सर्पाकार गति से घूमती हुई पहले दक्षिण की ओर और फिर पूर्व की ओर बढ़ी। फिर यह यात्रा सीधी उत्तर की ओर टिपरा जिले की दिशा में चली और डालटा के पास जिले की सीमा के निकट जा पहुंची। वहां से पंचकोण बनाती हुई वह फिर दक्षिण की ओर और अमिषपाड़ा होकर सीधी पश्चिम में चली गयी। अंत में उत्तर और पश्चिम की ओर एकदम मुड़कर टिपरा जिले की सीमा पर उनकी यात्रा हैमचर में पूरी हुई। गांधी की यात्रा की मोटामोटी रूपरेखा यही है।

यहां यह स्मरणीय है कि गांधी को नोआखाली में अपने पैर जमाने से पहले उनके पैर मुस्लिम लीग और बंगाल सरकार ने उखाड़ने का बड़ा प्रयत्न किया। गांधी को बिहार की याद दिलायी गयी, जहां अल्पसंख्यक मुसलमानों की बहुसंख्यक हिन्दुओं ने भारी संख्या में हत्या की थी। नेहरू, पटेल, राजाजी और उनके आश्रमवासियों के आग्रहों को गांधी ने ठुकरा दिया और अपने पैर अंगद की तरह नोआखाली में जमा लिया। गांधी का मानना था कि यदि अभी उनकी रचनात्मक अहिंसा का प्रयोग नोआखाली में सफल होता है तो इसका असर बिहार और भारत ही क्या पूरी दुनिया में होगा।

5 दिसंबर 1946 को गांधी ने बंगाल के मुख्यमंत्री शहीद सुहरावर्दी को अपने पत्रोत्तर में लिखा—"मैं देखता हूं कि आपने जो सलाह मुझे हर बार की तरह इस बार भी दुहराई है कि मेरा स्थान नोआखाली के बजाय बिहार में है, यदि मुझे लगा कि बिहार में मेरी उपस्थिति की जरा भी जरूरत है तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मुझे वहां जाने के लिए आपके प्रोत्साहन की कोई जरूरत नहीं होगी।"

सरदार पटेल को गांधी ने लिखा—"मैं यह समझता हूं, जानता हूं, इसलिए यहां 'नोआखाली' में पड़ा हूं। यहां से मुझे बुलाना मत। मैं कायर बनकर भागूं, तो मेरा दुर्भाग्य। अभी तक तो मैं हिन्दुस्तान के ऐसे लक्षण नहीं देखता। मुझे तो यहां करना है या मरना है।" सेवाग्राम आश्रमवासियों को भी गांधी ने स्पष्ट रूप से सूचित किया—"मेरी कल्पना का सत्याग्रह कमजोरों का शस्त्र है या सचमुच बलवानों का शस्त्र है? या तो मैं दूसरी बात सिद्ध कर दिखाऊंगा या इस प्रयत्न में अपने प्राण न्यौछावर कर दूंगा। यही मेरी साधना है। सेवाग्राम आश्रम के आश्रमवासियों को मेरे जल्दी लौट आने की तमाम आशाएं छोड़ देनी चाहिए।"

निःसंदेह नोआखाली में बैठे गांधी को बिहार की अब भी उतनी ही चिन्ता थी। उन्होंने कहा—"बिहार ने अपने शस्त्रों का अच्छा उपयोग नहीं किया और भारत को कलंकित कर दिया। बिहार अपने प्राणों द्वारा अपने बीच रहने वाले मुसलमानों से संपूर्ण सुरक्षा की गारंटी देकर पूर्व बंगाल के हिन्दुओं की उत्तम सहायता कर सकता था।"

हालांकि बिहार में नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद और जेपी जैसे लोगों ने बिहार की स्थिति को बहुत हद तक संभाल लिया था और गांधी भी बिहार के सदा संपर्क में थे।

नोआखाली के इस विशेषांक में हमने नोआखाली में गांधी यात्रा के साथ ही बिहार की यात्रा संबंधी दो आलेख *'एकला चलो रे!'* तथा *'जिसे तोड़ा, उसे जोड़ो'* प्रस्तुत किया, जिससे उस समय की स्थिति पता चलता है। गांधी नोआखाली में अपनी रचनात्मक-अहिंसा का अहिंसक सफल प्रयोग कर 7 मार्च 1947 को बिहार पहुंचे थे। नोआखाली की तरह बिहार में भी गांधी ने दंगों से संबंधित लोगों के नेताओं और विख्यात अपराधियों के प्रति सरकार और जनता के रवैये को उनकी सच्चाई की कसौटी

बनाया तथा 24 मई 1947 को अंतिम रूप में बिहार से चले गये।

गांधी के लिए बिहार और बंगाल तक सब समान थे। नोआखाली यात्रा की समाप्ति पर गांधी ने समाज का, उद्योग धंधों से संबंधित संगठन कैसे हों, उनकी कल्पना की सहकारी खेती कैसी हो और दरिद्रता-आलस्य का मुंह कैसे काला हो, जन-बल का उत्तम उपयोग कर सच्चा नियोजन कैसे हो, वर्ग एवं जातिविहीन समाज कैसे बने और समाज में व्याप्त कुरीतियों का अंत कैसे हो, विचार किया था और इसकी योजना भी बनायी थी। गांधी ने तो बंगाल को भारत का ही नहीं बल्कि दुनिया का सर्वोत्तम प्रांत बनाने की भी कल्पना की थी। बंगाल के मुख्यमंत्री शहीद सुहरावर्दी को पत्र लिखकर बताया था कि पूर्व बंगाल की प्राकृतिक छटा, यथा नारियल, सुपारी, ताड़ आदि के भव्य वृक्ष हों और विपुल वनस्पतियों को देखकर उनका मन कितना उन्मत्त हो जाता है। प्रकृति ने बंगाल को साहित्य, विज्ञान और संगीत के क्षेत्र में धुरंधर विद्वान देकर कितनी कृपा की है। गांधी ने आशा व्यक्त की थी कि भगवान ने सेवा की जो उन्हें शक्ति दी है, उसका उपयोग करके बंगाल की, जहां संस्कृतियों के संघर्ष के लिए कोई अवकाश नहीं—इन अत्यंत सादी किन्तु उतनी ही महत्त्वपूर्ण समस्याएं निपटाने से उन्हें बड़ा आनंद होगा।

बंगाल का यह भाग जो पूर्वी बंगाल कहा जाता था 1947 में भारत से अलग होकर पूर्वी पाकिस्तान कहलाया और फिर एक स्वतंत्र सोनार बंग्लादेश बन गया। यह विश्व का एकमात्र देश रहा, जिसकी स्वतंत्रा की जड़ में न तो धर्म था न ही भूभाग बल्कि उसकी महान बंगाली भाषा रही, जिसका राष्ट्रगीत भी दूसरे राष्ट्र के नागरिक रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचना है—नोआखाली की यात्रा में भी रवीन्द्रनाथ की कविताएं—*'एकला चलो रे!'* और *'जीवन जखन शुकाये जाय'* यात्रा की हमदर्द बन गयी थी।

बंग्लादेश की स्वतंत्रता में भारत की जनता बंगाल की जनता के सदैव साथ रही। जन्म लेते लोकतंत्र को दबाने के लिए पाकिस्तान जब दमन शुरू किया तो बंग्लादेश के नागरिकों के पक्ष में गांधी के शिष्य जयप्रकाश अकेले खड़े हो गये और बंग्लादेश के मूक नागरिकों की आवाज बनकर दुनियाभर में घूमकर जनमत तैयार किया और इससे गांधी के सपने को भी मूर्त रूप देने की कोशिश की।

'बा-बापू : 150' के अवसर पर जब कई गांधीजन सर्व सेवा संघ की एक पहल की रूप में बंग्लादेश और विशेषकर नोआखाली की पदयात्रा पर हैं, तो बंग्लादेश और वहां की जनता को हार्दिक शुभकामनाएं देते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि गांधी ने नोआखाली में जो रचनात्मक अहिंसा का सफल प्रयोग किया वहां का उपाय, दुनिया में जहां कहीं समुदायों और राष्ट्रों के बीच झगड़े पैदा होंगे और शांतिपूर्ण समझौते के लिए नई कार्यपद्धति की जरूरत होगी, वहां लागू किया जा सकेगा। **–अशोक मोती**

ऐबटाबाद

मेरे दिल को चीर कर देखें

❑ **गांधी**

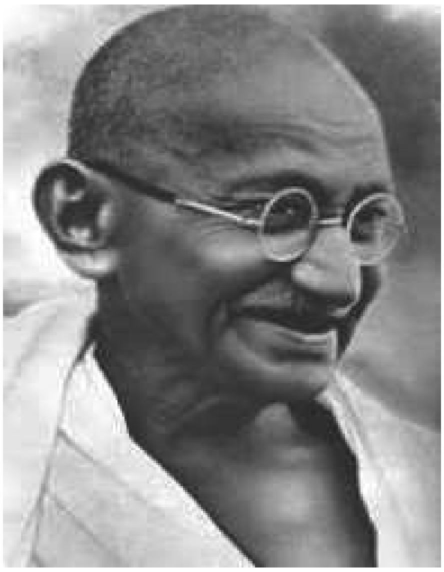

ऐबटाबाद शहर पिछले दिनों हिंसा और आंतकवाद की वजह से खूब खबरों में रहा है। यहीं पर अमेरिका और पाकिस्तान के संबंध में खटास आना शुरू हुआ है। हिंसा प्रतिहिंसा का, कटुता का गढ़ बन गया है ऐबटाबाद। लेकिन यह बात आज ध्यान से हट गयी है कि पाकिस्तान का यह शहर एक समय बादशाह खान के खुदाई खिदमदगारों का भी गढ़ था। आज से 73 बरस पहले यहां गांधीजी आये थे। तब उन्होंने यहां कुछ खरी-खरी बातें भी की थीं और लोगों को फख़्-ए-अफगान यानी बादशाह खान के साथ सबसे मजबूत हथियार, अहिंसा का हथियार उठाकर चलने की सलाह दी थी। गांधीजी ने उस समय जो कुछ कहा उसे हम सबको आज और ध्यान से पढ़ना चाहिए। –सं.

आपने मुझे जो मानपत्र भेंट किया, उसके लिए मैं आप सबका आभारी हूं। अपने मानपत्र में आपने अपने यहां 'विश्व के महानतम व्यक्ति' के पदार्पण पर अपनी प्रसन्नता प्रकट की है। आपका मानपत्र सुनते समय मेरे मन में यह सवाल घूमता रहा कि आखिर वे सज्जन हैं कौन। निस्संदेह, मैं तो नहीं हो सकता! मुझे अपने दोष भली-भांति मालूम हैं।

एथेंस के महान दार्शनिक सोलन के विषय में एक कथा प्रचलित है : विश्व के सबसे धनाढ्य व्यक्ति के रूप में विख्यात क्रीसस ने उनसे पूछा, संसार का सबसे सुखी व्यक्ति कौन है। क्रीसस ने सोच रखा था कि सोलन कहेंगे, आप ही वे सुखी व्यक्ति हैं। मगर सोलन ने कहा कि मैं कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि किसी के अंतकाल से पहले यह कैसे कहा जा सकता है कि वह सुखी है। अगर सोलन को किसी व्यक्ति के जीते-जी उसके सुखी होने या न होने के संबंध में निर्णय देना कठिन लगा तो जरा सोचिए कि किसी व्यक्ति की महानता के बारे में कोई फतवा देना कितना कठिन है। सच्ची महानता ऊंचाई पर स्थापित कोई ऐसी प्रतिमा नहीं है जिसे लोग आसानी से देख लें। मेरा सत्तर वर्षों का अनुभव तो मुझे यह बताता है कि अकसर वास्तव में महान लोग तो वे होते हैं, जिनके बारे में और जिनकी महानता के संबंध में संसार उनके जीवन-काल में कुछ नहीं जानता। सच्ची महानता का पारखी तो केवल ईश्वर है, क्योंकि वह मनुष्य के हृदय को पहचानता है।

ऐबटाबाद के निवासी ही नहीं, यहां का सूर्य, चंद्र और यहां के तारे भी मेरी एक झलक पाने को लालायित थे। भाइयो, तो क्या मैं यह मानूं कि आपके नगर के लिए कोई खास सूर्य और चंद्रमा तथा तारे हैं, जो वर्धा या सेगांव (सेवाग्राम) में नहीं चमकते? हमारे यहां काठियावाड़ में भाट नाम की एक जाति है। इस जाति के लोग पेशेवर चारण हैं, जिनका धंधा पैसा पाने के लिए अपने-अपने सरदारों की प्रशस्ति करना है।

खैर, मैं आपको भाट तो नहीं कहूंगा। अगर किसी का उपहास करना चाहें तब तो बात अलग है, लेकिन वैसे मैं चाहूंगा कि आप अपने नेताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करने की गलती को जरा समझें। इससे न उन्हें कोई लाभ होता है और न उनके काम में ही कोई सहायता मिलती है। इसलिए इस तरह बढ़ा-चढ़ाकर यशोगान करने वाले मानपत्र भेंट करने की आदत आप हमेशा के लिए छोड़ दें, यही मैं चाहूंगा। अब इस सत्तर साल की उम्र में कम-से-कम मैं तो नहीं चाहूंगा कि ईश्वर ने मुझे जो थोड़ा-बहुत समय और दिया हो, उसे इस तरह के निरर्थक आडंबरों में बर्बाद कर दिया जाये। अगर मानपत्र दिया ही जाना हो तो मैं चाहूंगा कि उसमें सम्मानित व्यक्ति के दोषों ओर त्रुटियों का वर्णन किया जाये, ताकि वह अपने अंतर में झांककर देखने और उन दोषों और त्रुटियों को निकाल बाहर करने को प्रेरित हो सके।

जब से इस प्रांत में आया हूं, तभी से मैं खुदाई खिदमतगारों को अहिंसा का सिद्धांत—संपूर्ण और शुद्ध अहिंसा-सिद्धांत—समझाने की कोशिश करता रहा हूं। मैं अहिंसा के मर्म को पूर्ण रूप से समझने का दावा नहीं करता। जितना-कुछ मैं समझ पाया हूं वह तो उस संपूर्ण का, उस महान वस्तु का एक अंशमात्र है। अहिंसा के संपूर्ण मर्म को समझना या उसका पूरा-पूरा आचरण करना मनुष्य के बस की बात नहीं है, क्योंकि वह तो स्वयं ही अपूर्ण है। यह तो केवल ईश्वर का ही गुण है, उस परमसत्ता का जिससे बड़ा सृष्टि में कोई नहीं है। लेकिन मैं आधी सदी से अधिक समय से इसे समझने और इसे अपने जीवन में उतारने का सतत प्रयास करता रहा हूं।

इसमें संदेह नहीं कि खुदाई खिदमतगारों ने अहिंसा को जिस हद तक समझा है, उस हद तक उसका आचरण करने का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसने उन्हें सबकी प्रशंसा का पात्र बनाया है। लेकिन अब उन्हें एक कदम और आगे जाना है। अपनी अहिंसा की अवधारणा को उन्हें अधिक व्यापक बनाना है और अगर उन्हें अंतिम अग्नि-परीक्षा में सफल होकर निकलना है तो अहिंसा के आचरण में—विशेषकर उसके विधायक पहलुओं के आचरण में—और अधिक पूर्णता और गहराई लानी है।

अहिंसा का मतलब केवल शस्त्र-त्याग नहीं है। यह कोई कमजोरों और नपुंसक लोगों का भी हथियार नहीं है। लाठी उठाने में असमर्थ कोई बच्चा तो अहिंसा का आचरण नहीं करता। सारे शस्त्रास्त्रों से अधिक सशक्त और सक्षम अहिंसा संसार में एक अद्‌भुत शक्ति के रूप में अवतरित हुई है। जिसने यह अनुभव करना नहीं सीखा है कि यह पशुबल की अपेक्षा लाख गुनी अधिक सक्षम शक्ति है, उसने इसके सच्चे स्वरूप को नहीं पहचाना है। इस अहिंसा की शक्ति को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसकी ज्योति तो हमारे हृदय में ही जल सकती है और वह ज्योति जलेगी तब जब हमारी उत्कट प्रार्थना के परिणामस्वरूप हमें भगवत्कृपा प्राप्त होगी।

कहते हैं, आज एक लाख खुदाई खिदमतगार ऐसे हैं, जिन्होंने अहिंसा को अपने धर्म-रूप में स्वीकार किया है। लेकिन इनसे बहुत पहले, 1920 में ही खान साहब ने अहिंसा को संसार के सबसे अधिक कारगर हथियार के रूप में जान लिया था ओर तभी उन्होंने इसे अपना भी लिया था। अहिंसा के अठारह वर्षों के आचरण से इसमें उनकी श्रद्धा और भी सुदृढ़ ही हुई है। उन्होंने खुद देखा है कि इसने उनके लोगों को किस प्रकार निर्भीक और सबल बना दिया है। अपनी छोटी-मोटी नौकरियां खो बैठने की आशंका से ही पहले वे घबरा जाते थे। लेकिन आज वे कुछ और ही महसूस करते हैं।

सत्तर साल की इस अवस्था में अहिंसा में स्वयं मेरी श्रद्धा आज इतनी प्रबल है, जितनी पहले कभी नहीं थी। लोग मुझसे कहते हैं : ''आपका अहिंसा का कार्यक्रम तो देश के सामने लगभग दो दशकों से पड़ा हुआ है, लेकिन आपने जो स्वराज्य दिलाने का वादा किया था, वह कहां है?'' मेरा उत्तर यह है कि कहने को तो अहिंसा को करोड़ों लोगों ने अपना लिया, लेकिन उसका आचरण बहुत कम लोगों ने किया और जिन्होंने किया उन्होंने भी उसे एक नीति मानकर ही किया। लेकिन इस सबके बावजूद जो परिणाम सामने आया है, वह मुझे खुदाई खिदमतगारों के बीच अपना प्रयोग जारी रखने के लिए प्रोत्साहित करने की दृष्टि से काफी अच्छा है।

जब मैं यहां आया तब मैंने सोचा भी नहीं था कि इस बार भी, जब यह तीसरी बार मैं आपके प्रांत में आया हूं, आप मुझे मानपत्र इनायत करेंगे। मैंने तो समझा था कि मैंने आपके प्रांत के साथ अपना इतना अधिक तादात्म्य स्थापित कर लिया है कि आप मुझे अपने में ही गिनेंगे और मुझे मानपत्र भेंट करने या अन्य शिष्टाचार की कोई जरूरत नहीं मानेंगे।

तो क्या मुझे यह समझना चाहिए कि अब भी मुझे आपसे प्रमाणपत्र प्राप्त करना बाकी है? पिछली बार तो आपने मुझे मानपत्र और थैली दोनों दिये थे, लेकिन इस बार सिर्फ मानपत्र ही दिया है—थैली नहीं। क्या मैं जान सकता हूं कि अपने किस गुनाह के कारण मैं इस तरह आपकी 'नजरों से गिर गया हूं?'

अनेक बार मैंने यह शिकायत सुनी है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता में इसलिए देर हो रही है कि मैं उसके लिए काफी प्रयत्न नहीं कर रहा हूं, और अगर मैं मात्र इसी पर अपनी शक्ति केन्द्रित कर दूं तो आज ही यह एकता स्थापित हो सकती है। क्या मैं आपको विश्वास दिलाऊं कि अगर आज मैं ऐसा करता हुआ मालूम नहीं पड़ रहा हूं तो इसका कारण यह नहीं है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता में मेरा उत्साह कम हो गया है। बात यह है कि इस महान काम के लिए अपनी अपूर्णता और ऐसे बड़े उद्देश्यों की पूर्ति के लिए केवल बाहरी साधनों की अपर्याप्तता जितनी मुझे अब महसूस हुई है, उतनी पहले कभी नहीं हुई थीं मैं पूर्णतः प्रभु की कृपा पर निर्भर रहने का पाठ अधिकाधिक सीखता जा रहा हूं।

अगर आप मेरे दिल को चीरकर देख सकें, तो आप पायेंगे कि उसमें सोते जागते चौबीसों घंटे, लगातार हिन्दू-मुस्लिम एकता

के लिए प्रार्थना और आध्यात्मिक साधना चलती रहती है। मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता अवश्य चाहता हूं—और किसी कारण से नहीं तो इस कारण से कि मैं जानता हूं उसके बिना स्वराज्य हासिल नहीं हो सकता। किसी को इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि हिन्दुओं का बहुमत होने के कारण वे दूसरी जातियों के समर्थन या सहायता के बगैर सविनय अवज्ञा संगठित करके हिन्दुस्तान के लिए या खुद अपने ही लिए स्वराज्य हासिल कर लेंगे। जैसा कि मैंने अक्सर कहा है, सविनय अवज्ञा अगर बिल्कुल शुद्ध रूप में हो तो कुछ आदमियों तक सीमित होने पर भी वह प्रभावकारी हो सकती है। लेकिन जरूरत यह है कि वे चंद व्यक्ति ऐसे हों जिनके पीछे सारे राष्ट्र की स्वीकृति, इच्छा और शक्ति हो।

सशस्त्र युद्ध में भी क्या यही बात नहीं होती? लड़ने वाली फौजों के पीछे सारे गैर-फौजी लोगों की मदद और सहयोग होना जरूरी होता है। ऐसा न होने पर वे अपंग हो जाते हैं। जब स्वराज्य के लिए मैं अधीर हूं तब हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए तो मेरा अधीर होना जरूरी ही है। और मुझे पूरा विश्वास है कि देर में या जल्दी, बल्कि शायद जल्दी ही, हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच ऐसी एकता स्थापित हो जायेगी जो जोड़-तोड़कर किया हुआ कोई राजनीतिक समझौता न होकर सच्ची और स्थायी दिली एकता होगी।

यह एक ऐसा सपना है जो बिल्कुल बचपन से ही मेरे जीवन में ओतप्रोत रहा है। अपने पिता के वक्त की मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे स्मरण है कि तब राजकोट के हिन्दू-मुसलमान किस प्रकार आपस में मिलते-जुलते थे और किस तरह एक-दूसरे के पारिवारिक और धार्मिक समारोहों में सगे भाइयों की तरह शामिल होते थे। मेरा विश्वास है कि देश में वे सुनहरे दिन एक बार फिर आयेंगे। दोनों जातियों के बीच इस समय जो तू-तू मैं-मैं और जरा-जरा-सी बात पर झगड़े-फसाद होते रहते हैं, वे मतिभ्रम के कारण हो रहे हैं। वे हमेशा कायम नहीं रह सकते।

इस दुनिया में बड़े-से-बड़े काम केवल मनुष्य के प्रयत्न से नहीं होते। वे तो समय आने पर ही होते हैं। अपने साधनों के चुनाव करने का ईश्वर का यह अपना तरीका है। हो सकता है, लगातार हार्दिक प्रार्थना के बावजूद मैं इस महान कार्य के लिए उपयुक्त न पाया जाऊं। हम सबको हर क्षण कठिबद्ध रहना चाहिए, क्योंकि कब और किसको वह अपने काम के लिए चुन ले, यह हम नहीं जानते। मेरे ऊपर सारी जिम्मेदारी डालकर आपको अपनी जिम्मेदारी से नहीं बचना चाहिए। मेरे लिए आप यह दुआ मांगें कि मेरे जीवन-काल में ही मेरा सपना सच हो जाये। हमें कभी निराश या हताश नहीं होना चाहिए। मनुष्य की हिकमत के मुकाबले ईश्वर की लीला तो अपरंपार है।

मुझे यह जानकर बहुत दुःख हुआ है कि इस प्रांत के कांग्रेसजनों में भी अंदुरूनी झगड़े पैदा होने लगे हैं। कल एक घंटे से अधिक समय तक आपकी प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों से एकांत में मेरी बातचीत हुई है। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उन्हें इससे निकलने का कोई रास्ता बतलाऊं। मैं कहता हूं कि इसका हल तो आपके अपने ही हाथों में है। खान साहब अब्दुल गफ्फार खा को आपने अपना बेताज का बादशाह माना है। आपने उन्हें 'बादशाह खान' और 'फख़्र-ए-अफगान' की गौरवपूर्ण उपाधियां बख्शी हैं। अतः आपके लिए, पहले की तरह ही, उनका शब्द ही कानून होना चाहिए। दलीलों में उनका विश्वास नहीं है। वे तो जो कुछ कहते हैं अपने दिल से कहते हैं। आपने उन्हें जो उपाधियां दी हैं, अगर वे दिखावटी नहीं हैं और उनको आप सही साबित करना चाहते हैं, तो आपको अपने आपसी मतभेदों को भुलाकर उनके नेतृत्व में एक संगठित दल की तरह काम करना सीखना चाहिए।

फिर, सीमा-प्रांत की जनता में फैली हुई गरीबी का भी सवाल है। मुझे बताया गया है कि उनमें से बहुतों को भर-पेट खाना भी मुश्किल से ही मिलता है। पठान जैसी हट्टी-कट्टी कौम को ऐसी दुर्दशा में रहना पड़े, यह उसके लिए बड़े अपमान की बात है। लेकिन इसका इलाज भी बहुत हद तक आपके ही हाथों में है। आप लोगों को अपने हाथों से काम करना और श्रम की गरिमा समझना सिखायें। इसमें शक नहीं कि मंत्रीमंडल सुविधाएं उपलब्ध करवा सकता है और करायेगा। लेकिन तफसीलों का ध्यान रखते हुए आरंभिक प्रयत्न तो स्वयंसेवकों को ही करना पड़ेगा।

ईश्वर आपको सही मार्ग दिखलाए। मैं यह जानता हूं कि जब हम आपस में झगड़ते भी हैं तो स्वाधीनता के आगमन की गति में तेजी लाने के लिए इस आशा से ही झगड़ते हैं कि उसके आने पर हमारे सारे दुख मिट जायेंगे।

ईश्वर करे, आजादी की हमारी लगन—हमें अलग करने वाले तमाम मतभेदों की तुलना में—हमारे बीच एकता स्थापित करने वाला ज्यादा मजबूत सूत्र साबित हो। ❑

सेवाग्राम आश्रम में आश्रमवासी बनें

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी द्वारा सन् 1936 में स्थापित 'सेवाग्राम आश्रम' से आप सभी परिचित ही हैं। गांधीजी यहां लगभग 10 वर्षों तक रहे और अनेक ऐतिहासिक निर्णय लिये। उन्होंने स्वाधीनता संग्राम यहीं से चलाया। आज भी यह आश्रम गांधी-विचार का एक सुखद प्रेरणास्त्रोत, चित्त-शोधन एवं चित्तशुद्धि का साधन केन्द्र है। सेवाग्राम आश्रम अपने उद्देश्य के प्रति हमेशा सजग व प्रयासरत रहा है।

आश्रम में रहकर अनुशासन के साथ आश्रम जीवनशैली अपनाने के इच्छुक व्यक्तियों का आश्रम हृदय से स्वागत करता है। ऐसे इच्छुक व्यक्तियों के लिए आश्रम में निवास एवं भोजन की व्यवस्था आश्रम की ओर से निःशुल्क की जायेगी।

इस संदर्भ में इच्छुक महिला-पुरुष कृपया निम्न पते पर संपर्क करें :—

श्री टी.आर.एन. प्रभु, अध्यक्ष, सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान, सेवाग्राम-442102, वर्धा (महाराष्ट्र), मो. : 9946842403, फोन : 07152-284753। **–स.ज. प्रतिनिधि**

सबसे बड़े क्रांतिकारी गांधीजी

❑ जयप्रकाश नारायण

गांधीजी का अपना एक जीवन-दर्शन था, उनके अपने कुछ सामाजिक सिद्धांत थे और राज्य-व्यवस्था के विषय में भी कुछ उनकी अपनी एक निराली कल्पना थी। इसीलिए जब हमें स्वराज्य मिला तो हमको विदेशी कल्याणराज की अथवा समाजवाद या साम्यवाद की नकल करने की कोई जरूरत नहीं थी। स्वराज्य के बाद के ध्येय के लिए गांधीजी ने इस सबसे बिल्कुल भिन्न और नया, सर्वोदय का विचार हमारे सामने रखा ही था।

भले ही हम चारों तरफ से सब कुछ लें। समाज-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान आदि सबमें जो अच्छा हो, उसे हम जरूर ग्रहण करें। न कभी ज्ञान की उपेक्षा करें और न सत्य की खोज में कोई रुकावट ही खड़ी करें। लेकिन जो कुछ भी लें, उसे अपनी परिस्थिति और अपने वातावरण के साथ अंटने वाला बनाने का प्रयत्न करें। उसकी जड़ें भारत की भूमि में, भारत के इतिहास में, भारत की संस्कृति में और भारत की आत्मा में होनी चाहिएं इसीलिए गांधीजी ने कहा था : *''मैं अपने घर की सब खिड़कियां खुली रखना चाहता हूं और चाहता हूं कि चारों ओर की हवाएं उनमें से गुजरें, लेकिन ये हवाएं ऐसी नहीं होनी चाहिए कि मेरे घर को ही उखाड़कर फेंक दें।''*

इसी के साथ गांधीजी इस बात को भी भलीभांति समझ चुके थे कि अब 'लोगों की सम्मति से बनने वाली सरकार' ही काफी नहीं है, अब तो खुद 'लोगों की अपनी सरकार' होनी चाहिए, जिससे लोग अपने सब व्यवहार खुद ही चलाने लगें। इसी दृष्टि से उन्होंने कहा था कि ''स्वराज्य की बुनियाद ग्रामराज्य है।'' वे चाहते थे कि अधिक-से-अधिक अधिकार जनता के हाथ में रहने चाहिए।

लेकिन इस ग्रामराज्य का मतलब बैलगाड़ी की संस्कृति नहीं था। आज के गांवों को तो गांधीजी घूरे के ढेर कहा करते थे। वे जिस गांव की कल्पना करते थे, वह तो खेती और उद्योग के कामों में लगा छोटे-छोटे समुदायों की बस्ती वाला गांव था। यदि हम आज की दुनिया को बचाना चाहते हैं तो हमको गांधीजी के 'ग्रामस्वराज्य की कल्पना' पर ध्यान देना ही पड़ेगा।

हिंसा की जड़ को ही उखाड़ डालना : गांधीजी एक ऐसी दुनिया का निर्माण करना चाहते थे, जिसमें हिंसा के लिए रंचमात्र भी स्थान न रहे और मनुष्य जाति युद्ध के अभिशाप से मुक्त बन सके। अतएव इसके लिए हमें ठेठ बुनियाद से ही प्रयत्न करने पड़ेंगे और अहिंसा की शक्तियों का विकास करना होगा। पश्चिम के शांतिवादियों का ध्यान अभी इस दिशा में विशेषरूप से गया नहीं है। वहां शांत प्रतिकार, असहयोग अथवा विरोध के प्रदर्शनात्मक कामों पर ज्यादा ध्यान दिया गया है। किन्तु दूसरे लोग युद्ध के लिए तेजी के साथ तैयारियां करते रहें और शांतिवादी के नाते हम यह सोचते रहें कि जब कभी युद्ध हो तो हमारा कर्तव्य है कि हम युद्ध का प्रतिकार करें और उसे रोकें। मेरे ख्याल में यह स्थिति बहुत ही बेढंगी बनेगी।

असल में युद्ध को मिटाने के लिए हमें युद्ध की जड़ों को उखाड़ना पड़ेगा। युद्ध की जड़ें लोगों के चित्त में है, उनकी शिक्षा-पद्धति में है, उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं में और उनकी जीवन-प्रणालियों में है। जब तक इन सारे क्षेत्रों को संभाला नहीं जायेगा, तब तक हिंसा और युद्ध को दुनिया से नेस्तनाबूद करने की हमारी चिन्ता बांझ ही बनी रहेगी।

इस बात को गांधीजी ने अच्छी तरह समझ लिया था। यही कारण था कि उन्होंने व्यक्ति और समाज के मानस में आमूल परिवर्तन करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया था। उनके सारे रचनात्मक कार्यक्रम, शिक्षा की पद्धति में क्रांतिकारी परिवर्तन, ग्रामस्वराज्य की दृष्टि से आर्थिक और सामाजिक सत्ता और लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण के लिए उनका जोरदार आग्रह, सादे और नैतिक जीवन की उनकी हिमायत, सब धर्मों, जातियों, वंशों आदि की समानता के लिए उनका अनुरोध, अंतर्राष्ट्रीयता के साथ समरस होकर चलने वाली राष्ट्रीयता की उनकी भावना—इन सारी बातों का एक ही अर्थ होता है कि वे हिंसा की जड़ों को लोगों के चित्त में से पूरी तरह उखाड़ डालना चाहते हैं। कुछ सतही सुधारों से उनको कोई संतोष नहीं था। उनका प्रयत्न ठेठ बुनियाद से ही नवनिर्माण करने का रहा।

एक अहिंसक क्रांतिकारी : गांधीजी का जो रचनात्मक कार्यक्रम था, उसके मूल में एक विचार था, एक तत्त्व था, एक जीवन-दर्शन था, एक समाज-दर्शन था। उन्होंने रचनात्मक कार्यकर्ताओं से कहा था कि कुछ छोटी-मोटी सेवाएं करना, बेकारों को थोड़ा काम दिला देना, उत्पादन का कुछ काम करना और गरीबों की जेबों में दो पैसे अधिक पहुंचाना, केवल यही हमारा उद्देश्य नहीं है

बल्कि हमें तो अपने इन रचनात्मक कार्यक्रमों की मदद से समाज में अहिंसक क्रांति लानी है। हमारा मूल उद्देश्य है, अहिंसक समाज का निर्माण करना। गांधीजी और चाहे जो रहे हों, पर सबसे पहले वे एक क्रांतिकारी थे, उन्होंने खुद ही लिखा है : ''कुछ लोगों ने मुझे मेरे जमाने का सबसे बड़ा क्रांतिकारी कहा है। 'सबसे बड़ा' कहना गलत हो सकता है, किन्तु मैं अपने-आपको एक क्रांतिकारी; एक अहिंसक क्रांतिकारी, अवश्य मानता हूं।''

अपनी मृत्यु के कुछ समय पहले गांधीजी ने कहा था कि ''मेरे काम का सच्चा आरंभ तो अब हो रहा है और अपने इस ध्येय को सिद्ध करने के लिए मैं सवा सौ साल तक जीना चाहता हूं।'' उनके इस कथन में उनका युवकोचित उत्साह तो प्रकट हुआ ही है, इसी के साथ यह भी प्रकट होता है कि उन्होंने अपने सामने कितना बड़ा ध्येय रखा था और उस ध्येय की सिद्धि के लिए वे कितना पुरुषार्थ करना चाहते थे।

सब विचारधाराओं का सर्वोदय में विलय : इस देश में गांधीजी के विचारों का जितना अध्ययन होना चाहिए, उतना हो नहीं पाया है। गांधीजी के जीवनकाल में मैं भी उनके विचारों को ठीक से समझ नहीं सका था। मेरे अपने अनुभव से मुझे लगता है कि हम विदेशी तत्त्वज्ञान का और विदेशी विचारधाराओं का अध्ययन तो करते हैं, किन्तु अपनी पुण्यभूमि में जन्मे इस नये तत्त्वज्ञान के बारे में हमारा अज्ञान भयंकर ही है। अब मुझे यह विश्वास हो चुका है कि गांधीजी के विचार हमारे लिए ही नहीं, बल्कि सारी दुनिया के लिए हैं। मैं तो देख रहा हूं कि आज अपने को 'न्यू लेफ्ट' यानी नये वामपंथी कहलाने वाले क्रांतिकारी नौजवान भी मानो गांधीजी के ही विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त कर रहे हैं। इसके बावजूद, आज अपने ही देश में गांधीजी की विचारधारा के बारे में भारी अज्ञान और उपेक्षा पायी जाती है। गांधीजी का नाम तो बहुत लिया जाता है, लेकिन उनके विचारों का अध्ययन नहीं किया जाता। मैं यह कहना चाहता हूं कि आज गांधी-विचार देश और दुनिया के लिए एक तारक उपाय है। मैं यह अवश्य ही मानता हूं कि इस समय की दूसरी सभी सामाजिक विचारधाराओं और प्रणालियों की तुलना में सर्वोदय का विचार स्पष्ट रूप से आगे बढ़ा हुआ और उन्नत विचार है। मेरा यह अटल विश्वास है कि यदि दुनिया में कभी भी समानता, बंधुता, स्वतंत्रता और शांति की स्थापना करनी होगी तो समाजवाद आदि सब वादों को अंत में सर्वोदय में विलीन होना ही पड़ेगा। ❑

युगपुरुष गांधी

❑ **विनोबा**

अनादिकाल से लेकर आज तक अनेक महापुरुष यहां अवतरित हुए हैं और यहां के जीवन को कम-बेशी समृद्ध करते गये हैं। इन महापुरुषों की अंतिम कड़ी के रूप में और भविष्य में आने वाले महापुरुषों में प्रथम गिने जाने वाले गांधीजी थे। भूतकाल में महापुरुषों ने हमें जो कुछ दिया, उसका सार हमने गांधीजी में पाया और भविष्य में जो असंख्य महापुरुष परमेश्वर भेजने वाला है, उनके बीज भी गांधीजी में मिले।

गांधीजी एक सत्पुरुष थे, यह तो सभी मानते हैं। लेकिन सत्पुरुष होने के अलावा वे एक नये विचार के प्रवर्तक भी थे। उन्होंने एक नया जीवन-विचार दिया। ऐसा नया विचार सभी सत्पुरुषों द्वारा प्रकट नहीं होता। जिस सत्पुरुष का गठन एक खास परिस्थिति में होता है, उसके मन में नया विचार पैदा होता है। हृदय तो सभी सत्पुरुषों का एक-सा होता है, लेकिन हरएक की बुद्धि और प्रतिभा अलग-अलग होती है। जिसकी प्रतिभा की जिस काल में अधिक आवश्यकता होती है, वह सत्पुरुष उस काल का युग-प्रवर्तक बन जाता है। गांधीजी ऐसे ही युग-प्रवर्तक सत्पुरुष थे।

सामान्य धर्म-प्रचार और क्रांति दोनों अलग-अलग बातें हैं। सामान्य धर्म का बोध तो ऋषि और संत हमेशा देते रहते हैं, लेकिन जब युग की मांग और संत के उपदेश का संयोग होता है, तब 'क्रांति' होती है। सर्वसामान्य धर्म का प्रचार एक बात है और जमाने को किस बात की जरूरत है, यह परखकर उसके साथ धर्म-विचार जोड़ देना दूसरी बात है। अंदर के धर्म-विचार का बल और बाह्य परिस्थिति का बल, दोनों को जो जोड़ देता है, वह केवल 'धर्म-पुरुष' या 'सत्पुरुष' नहीं रह जाता, बल्कि युग-पुरुष बन जाता है। गांधी ऐसे ही युग-पुरुष थे। ❑

नोआखाली में गांधीजी की यात्रा

एकला चलो रे!

जब गांधीजी नोआखाली के लिए दिल्ली से चले, तब भी कलकत्ते में दावानल जल रहा था। अगस्त 1946 से यह दावानल पूरी तरह कभी बुझ ही नहीं पाया था। गांधीजी ओर उनके दल को यह चेतावनी भी मिली थी कि कलकत्ते में रेल से उतरने के बाद उनकी मोटर की खिड़कियों से तेजाब के गोले फेंके जा सकते हैं, जिसके लिए उन्हें तैयार रहना चाहिए। मित्रों ने गांधीजी से यह तर्क करने की कोशिश की : क्या आपके लिए ऐसा खतरा उठाना ठीक है? और, नोआखाली में आपकी निःशस्त्र उपस्थिति से दंगे के शिकार बने हुए लोगों की क्या रक्षा हो सकती है?

''मैं नहीं जानता कि वहां मैं क्या कर सकूंगा,'' गांधीजी ने अपने एक बहुत आदरणीय मित्र से कहा, जिन्होंने ऐन समय पर इस खतरनाक दुःसाहस के लिए प्रस्थान करने से गांधीजी को रोकने की कोशिश की थी। ''मैं इतना ही जानता हूं कि जब तक मैं वहां नहीं जाऊंगा तब तक मुझे आंतरिक शांति नहीं मिलेगी।'' फिर वे विचार की शक्ति पर भाषण करने लगे। विचार दो प्रकार के होते हैं—निष्क्रिय और सक्रिय। निष्क्रिय विचार हमारे मस्तिष्क में असंख्य हो सकते हैं, जैसे सूर्य की किरण में असंख्य कण होते हैं। वे निर्जीव अंडों की तरह हैं। उनका कोई मूल्य नहीं होता। ''परंतु एक ही सक्रिय विचार हृदय की गहराई से निकले, मूलतः शुद्ध हो और प्राण की संपूर्ण शक्ति से पूर्ण हो, तो वह गतिशील और सक्रिय बनकर इतिहास का निर्माण कर सकता है।'' नोआखाली के लोगों के पास जाने के लिए मेरे भीतर जो प्रेरणा स्वयं उत्पन्न हुई है, उसे मैं दबाना नहीं चाहता।

अपने प्रस्थान के एक दिन पहले शाम की प्रार्थना-सभा में भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा कि मैं जिस यात्रा पर जा रहा हूं, वह लंबी और कठिन यात्रा है और मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। परंतु अपना मार्ग सरल बनाने के लिए मानव को ईश्वर पर विश्वास रखना होता है और अपने कर्तव्य का पालन करना होता है। मेरा अनुरोध है कि लोग रास्ते में स्टेशनों पर भीड़ न करें। भारत ने मुझ पर अपना अपार प्रेम बरसाया है। अब अधिक प्रदर्शन की जरूरत नहीं हैं। मैं बंगाल में किसी का न्यायाधीश बनकर नहीं जा रहा हूं। मैं वहां ईश्वर का सेवक बनकर जा रहा हूं; और जो ईश्वर का सेवक है उसे ईश्वर की सारी सृष्टि का सेवक बनना पड़ता है।

यात्रा वैसी ही थकाने वाली साबित हुई जैसी कि बहुतों को आशंका थी। रास्ते के तमाम बड़े स्टेशनों पर विशाल मानव-समुदाय एकत्र हो जाता था। कई स्थानों पर जहां तक नजर जाती थी, मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते थे। भीड़ डिब्बों की छतों पर चढ़ जाती है, खिड़कियों की हवा रोक देती थी, कांच तोड़ देती थी, किवाड़ों का नाश कर देती थी और इतना चीखती-चिल्लाती थी कि कान फट जाते थे। लोग दर्शनों के लिए बार-बार जंजीर खींच लेते थे।

गाड़ी कलकत्ते 5 घंटे देर से पहुंची। स्टेशन से गांधीजी को सीधे शहर से 10 मील दूर स्थित सतीशचन्द्र दासगुप्ता के खादी प्रतिष्ठान आश्रम में सोदपुर ले जाया गया। वहां सैकड़ों लोगों की श्रोता-मंडली लगभग दो घंटे से शाम की प्रार्थना के लिए गांधीजी की प्रतीक्षा कर रही थी।

दूसरे दिन उन्होंने प्रार्थना के महत्त्व को अपने सायंकाल के भाषण का विषय बनाया। जिस साहसपूर्ण कार्य के लिए वे प्रयाण कर रहे थे, उसमें प्रार्थना उनके कार्य का बड़े से बड़ा साधन बनने वाली थी। वे असंख्य पुरुषों और स्त्रियों के सामने भय की रामबाण दवा के रूप में, दुर्बलों को बलवान बनाने वाले साधन के रूप में प्रार्थना की भेंट धरने वाले थे।

गांधीजी के दिल्ली से रवाना होने के पहले वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी उनके पास एक वक्तव्य का मसौदा लाये, जिसमें ''किसी के भी द्वारा हुई'' हिंसा की निन्दा की गयी थी, और सांप्रदायिक शांति के लिए जनता से अपील की गयी थी। वाइसराय चाहते थे कि वह वक्तव्य गांधीजी और जिन्ना दोनों के सम्मिलित हस्ताक्षर से निकाला जाय। गांधीजी की अभिलाषा सांप्रदायिक शांति के लिए किसी से कम नहीं थी। परंतु यह तो समानता स्थापित करने की हद हो गयी! इस अपील का महत्त्व तभी होता जब वह उस पक्ष की ओर से की जाती, जिसने पहले हिंसा का सक्रिय प्रचार किया था और हिंसा का ताण्डव खेले जाने के बाद उसे उचित बताया था। परंतु यदि वाइसराय ऐसा न करा सकें तो गांधीजी का सुझाव था कि वाइसराय स्वयं सरकार के मुखिया की हैसियत से अपने ही नाम से शांति की अपील निकालें, क्योंकि कानून और व्यवस्था की रक्षा की विशेष जिम्मेदारी उन्हीं पर थी। अंत में अपील वाइसराय और उनके मंत्रि-मंडल की ओर से निकाली गयी, जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के प्रतिनिधि थे। उस अपील की ओर लोगों का ध्यान दिलाते हुए गांधीजी ने 30 अक्टूबर 1946 को अपने प्रार्थना-प्रवचन में कहा कि यदि हम हिंस्र पशुओं की तरह आपस में लड़ते रहे, तो हम दुनिया में भारत का नाम बदनाम कर देंगे।

बंगाल के गवर्नर मि. बरोज ने गांधीजी से अपनी मुलाकात के समय पूछा, ''आप मुझसे क्या कराना चाहते हैं?'' जहां तक गांधीजी का संबंध था, वे गवर्नर से मिलने शिष्टाचार के नाते ही गये थे। उन्होंने उत्तर दिया, ''महोदय, कुछ नहीं।''

गांधीजी के उत्तर न तो गवर्नर को बहुत पसंद आये और न सेनापति को।

गांधीजी ने कहा : ''भारत में ब्रिटिश सेनाएं भारत की रक्षा करने के लिए नहीं, परंतु उन ब्रिटिश स्वार्थों की रक्षा के लिए हैं, जो भारत पर जबरन लादे गये थे; और अब उनकी जड़ें इतनी जम गयी हैं कि ब्रिटिश सरकार भी उन्हें उखाड़ नहीं सकती। अंग्रेज यहां परोपकारी बनकर नहीं आये थे और न उनके यहां ठहरे रहने अथवा उनकी सेनाओं के यहां बने रहने के पीछे भी कोई परोपकार की भावना है, भले ही इसके विरुद्ध कुछ भी कहा जाय।''

एक मुसलमान मित्र आये और गांधीजी से पूछने लगे, ''आप नोआखाली क्यों जाना चाहते हैं? बंबई, अहमदाबाद या छपरा तो आप नहीं गये?'' नोआखाली आप क्या इसीलिए जाना चाहते हैं कि इन दूसरे स्थानों पर पीड़ित लोग मुसलमान हैं, जब कि नोआखाली में वे हिन्दू हैं? क्या ऐसी हालत में आपके नोआखाली जाने से भारत के हिन्दू और मुसलमानों का मौजूदा तनाव ज्यादा नहीं बढ़ेगा? गांधीजी ने उत्तर दिया, आपके बताये हुए किसी भी स्थान पर मैं अवश्य जाता, यदि नोआखाली जैसी भीषण घटनाएं वहां हुई होतीं और मुझे यह लगता कि घटना-स्थल पर उपस्थित हुए बिना मैं उन स्थानों के लिए कुछ नहीं कर सकता। अत्याचार और बलात्कार की शिकार बनी हुई नोआखाली नारियां मुझे तुरंत बुला रही हैं। मैंने निश्चय कर लिया है कि जब तक उपद्रव की अंतिम आग बुझ न जायेगी तब तक मैं बंगाल नहीं छोड़ूंगा। ''मैं यहां पूरे वर्ष या इससे भी अधिक ठहर सकता हूं। आवश्यक हुआ तो मैं यहीं मरूंगा। परंतु मैं हार नहीं मानूंगा।''

यह पहला संकेत था जो गांधीजी ने अपने मन में आकार ले रहे ''करो या मरो'' के दृढ़ निश्चय के विषय में जनता को दिया था। उनके दूसरे उद्‌गार से यह प्रकट हो गया कि वे अपना अटल निर्णय पहले ही कर चुके हैं। उन्होंने कहा : ''मैंने अपने आपको अगले कांग्रेस अधिवेशन में अनुपस्थित रहने के लिए तैयार कर लिया है। यह अधिवेशन नवंबर के अंतिम सप्ताह में मेरठ में होने वाला है। मैंने अपने को सेवाग्राम आश्रम और अपनी नयी प्रिय वस्तु उरुलीकांचन के निसर्गोपचार-केन्द्र संबंधी तमाम जिम्मेदारियों से मानसिक रूप में मुक्त कर लिया है।

फिर भी जल्दी से जल्दी से जल्दी नोआखाली पहुंचने की अपनी सारी अधीरता के बावजूद 4 दिन बाद ही गांधीजी सचमुच कलकत्ता छोड़ सके। ये 4 दिन उनके मिशन में सबसे अधिक फलदायक सिद्ध हुए।

बकरीद का मुस्लिम त्योहार निकट आ रहा था। उस मौके पर सांप्रदायिक संघर्ष की संभावना नकारी नहीं जा सकती थी। यह त्योहार पूरा हो जाने तक शहर की शांति को स्थिर करने के लिए गांधीजी कलकत्ते में और ठहर जायं। जब कलकत्ता कौमी आग में जल रहा है तब नोआखाली जाने से क्या लाभ?

गांधीजी ठेठ खिलाफत के दिनों से बंगाल के मुख्यमंत्री को जानते थे। उस समय शहीद अपने आपको गांधीजी का ''बेटा'' बताने में गौरव अनुभव करते थे। काश, उस भावना को वे शहीद सुहरावर्दी में पुनः जगा पाते! और क्यों नहीं जगा सकते? उनका मन बोला। इसलिए गांधीजी ने परस्पर विरोधी लगने वाले ढंग से नोआखाली का मिशन नोआखाली न जाकर आरंभ करने का और जो व्यक्ति जन-साधारण की कल्पना में नोआखाली के उपद्रवों का जन्मदाता माना जाता था उसके हाथ में पहुंचकर उसे जीतने का निर्णय किया!

गांधीजी ने अपने इस भावी सहयोगी के साथ अपनी पहली भेंट यह कह कर आरंभ की, ''शहीद साहब, यह क्या बात है कि हर आदमी आपको गुंडों का राजा कहता है? कोई भी आपके बारे में अच्छी बात नहीं कहता!'' उस समय शहीद सुहरावर्दी अपनी कोहनी के सहारे धृष्टतापूर्वक गांधीजी के सामने लंबे लेटे हुए थे।

शहीद ने उपेक्षा के भाव से उत्तर दिया, ''महात्माजी, क्या आपकी पीठ के पीछे आपके बारे में भी लोग तरह तरह की बातें नहीं करते?''

गांधीजी ने हंसते हुए उत्तर दिया, ''ऐसा हो सकता है। फिर भी कम से कम कुछ आदमी तो ऐसे हैं, जो मुझे महात्मा कहते हैं परंतु मैंने एक भी व्यक्ति को शहीद सुहरावर्दी को महात्मा कहते नहीं सुना है।

शहीद पर इसका जरा भी असर नहीं हुआ।

बाद के दिनों में उन्होंने बंगाल में सांप्रदायिक मेलजोल स्थापित करने के लिए एक योजना बनायी, जो आगे चलकर गांधीजी के नोआखाली शांति मिशन का आधार बन गयी। उस योजना पर हस्ताक्षर करने वाले लोगों ने संपूर्ण बंगाल के लिए अपनी एक शांति समिति बना ली। उसमें हिन्दू और मुसलमान समान संख्या में लिये गये और मुख्यमंत्री उसके सभापति बने।

गांधीजी नोआखाली के लिए रवाना हो सके उससे पहले बिहार ने उनकी कड़ी परीक्षा लीं कलकत्ता और नोआखाली की घटनाओं के समाचार अन्य बुरे समाचारों की तरह तेजी से फैले और बिहार के पड़ोसी प्रांत में उन्होंने एक

व्यापक उत्तेजना पैदा कर दी, जिससे वह एक विशाल बारूदखाना बन गया। प्रतिशोध का नारा बुलंद हो चुका था। गांधीजी को यह सुनकर आघात पहुंचा कि बिहार से डर कर भागने वाले कुछ मुसलमानों पर आक्रमण करके बिहारी हिन्दुओं ने उन्हें मार डाला।

3 नवंबर को कलकत्ते के एक मुस्लिम लीगी अखबार 'मॉर्निंग न्यूज' में यह खबर छपी कि बिहार में विशाल पैमाने पर दंगे फैल गये हैं। गांधीजी ने तुरंत पंडित नेहरू को तार देकर बिहार की ब्योरेवार बातें पूछीं।

उन्होंने दूसरे दिन प्रार्थना सभा के लिए लिखित एक संदेश में कहा, ''कांग्रेस जनता की है। जहां कांग्रेस सत्तारूढ़ है वहां यदि कांग्रेस जन मुसलमानों की रक्षा न कर सकें, तो कांग्रेस सरकार के होने से क्या लाभ?'' इसी प्रकार यदि किसी लीगी प्रांत में लीगी मुख्यमंत्री हिन्दुओं की रक्षा नहीं कर सके, तो उसका वहां रहना व्यर्थ है। यदि दोनों में से कोई एक अथवा दोनों ही अपने-अपने प्रांतों में मुस्लिम या हिन्दू अल्पसंख्यकों की रक्षा करने के लिए सेना की सहायता लेने को मजबूर होते हैं, तो इसका यह मतलब हुआ कि उनमें से किसी का भी संकट के समय सामान्य लोगों पर सचमुच कोई नियंत्रण नहीं है और दोनों अंग्रेजों को इस बात का निमंत्रण दे रहे हैं कि वे भारत पर अपनी सर्वोपरि सत्ता बनाये रखें। ''यह ऐसी बात है जिस पर हम सबको गहरा विचार करना चाहिए।''

दूसरे दिन उन्होंने पंडित नेहरू को पत्र लिखा :

बिहार के समाचारों ने मुझे जड़ से हिला दिया है। मुझे अपना कर्तव्य स्पष्ट दिखायी देता है।...यद्यपि मैंने उपवास को टालने का कठोर प्रयत्न किया है, तो भी अब मैं उसे अधिक टाल नहीं सकता।...मेरा अन्तर्नाद मुझसे कहता है : ''तुम इस अत्यन्त मूर्खतापूर्ण हत्याकांड के साक्षी होने के लिए जीवित नहीं रह सकते। यदि लोग जो सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है उसे भी देखने से इनकार करें और जो कुछ तुम कहते हो उस पर ध्यान न दें, तो क्या इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारा जीना व्यर्थ है?'' यह तर्क मुझे उपवास की ओर अनिवार्य रूप में धकेल रहा है। इसलिए मैं एक वक्तव्य निकालना चाहता हूं कि यदि पागलपन का यह दौर बंद नहीं होगा, तो मुझे आमरण अनशन करना पड़ेगा।...तुम मुझे विश्वास है कि तुम मेरे प्रस्तावित कदम का समर्थन करोगे। कुछ भी हो, मेरी संभव मृत्यु के बारे में एक क्षण का भी विचार किये बिना तुम अपना काम करते रहना और मुझे ईश्वर की दया पर छोड़ देना। चिन्ता तो करना ही मत।

परंतु न तो पंडित नेहरू ने और न सरदार पटेल ने गांधीजी को समझाने की कोशिश की। वे अच्छी तरह जानते थे कि बाजी कितनी बड़ी है। वह भारत की स्वाधीनता गंवाने से जरा भी कम नहीं थी। 6 नवंबर को नोआखाली के लिए रवाना होने से पहले गांधीजी ने एक वक्तव्य और एक अपील 'बिहार से' नामक शीर्षक से निकाली—

लगता है कि बिहार ने अपने बारे में मेरे सपनों को झुठला दिया है।...भारत के

प्रधानमंत्री और उनके साथियों का वहां लगातार रहना इस बात का प्रमाण है कि वहां कैसी करुण घटनायें हो रही हैं। इसके उत्तर में यह बड़ी आसानी से कहा जा सकता है कि मुस्लिम लीगी सरकार के शासन में बंगाल की हालत बिहार से अधिक बुरी नहीं तो अधिक अच्छी भी नहीं थी। और यह भी कहा जा सकता है कि बिहार में जो कुछ हो रहा है, वह केवल बंगाल का ही परिणाम है।

गांधीजी 6 नवंबर को सोदपुर से एक विशेष ट्रेन में रवाना हुए। ट्रेन की व्यवस्था मुख्यमंत्री ने की थी। गांधीजी के साथ बंगाल के श्रममंत्री शममुद्दीन अहमद और बंगाल सरकार के दो संसदीय सचिव नसरुल्ला खां और अब्दुल रशीद गये। इन्हें बंगाल सरकार ने गांधीजी की सुविधा का ध्यान रखने और नोआखाली में गांधीजी के शांति मिशन में स्थानीय कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त कराने के लिए खास तौर पर नियुक्त किया था। मुख्यमंत्री का भी गांधीजी के साथ जाने का इरादा था, परंतु कलकत्ते में ''दूसरा कामकाज'' होने के कारण वे नहीं जा सके। उनका यह भी सुझाव था, और गांधीजी ने उसका उत्साह पूर्वक स्वागत किया था कि मुख्यमंत्री की लड़की और नसरुल्ला खांकी लड़की भी उनके साथ दौरे पर जायं। दोनों लड़कियां जाने को उत्सुक थी। परंतु बाद में यह योजना छोड़ दी गयी, क्योंकि शहीद साहब को बताया गया कि परदा रहित लड़कियों के गांधीजी के साथ जनता के सामने आने से कट्टरपंथी मुसलमानों को आघात लग सकता है और धर्मान्ध मुल्लाओं का, जिनके लिए नोआखाली बदनाम था, विरोध खड़ा हो सकता है।

गोआलंदो से नदी की यात्रा शुरू हुई। लगभग 100 मील स्टीमर से पद्मा में यात्रा करके गांधीजी और उनकी मंडली रात को देर से चांदपुर पहुंची।

रात तो नदी के बीच स्टीमर पर बीती। दूसरे दिन सुबह गांधीजी के रेल द्वारा नोआखाली में अपने उद्दिष्ट स्थान चौमुहानी के लिए रवाना होने से पहले एस. एस. कीवी स्टीमर पर दो शिष्ट मंडल उनसे मिले। एक मुसलमानों का था, दूसरा हिन्दुओं का।

परंतु जहां तक मैंने समझा है, आप यह नहीं चाहते। 'क्या नोआखाली के उपद्रव उस व्यवहार के द्योतक हैं, जिसकी उन्हें पाकिस्तान में उम्मीद रखनी चाहिए?—' यह प्रश्न जो हिन्दू मुझसे पूछते हैं उन्हें मैं क्या उत्तर दूं? मेरे हृदय में इस्लाम के पैगम्बर का आदर आपसे कम नहीं है; परंतु तानाशाही और बलात्कार किसी धर्म को भ्रष्ट करने का मार्ग है, न कि उसे आगे बढ़ाने का।

यदि हृदय से धर्म-परिवर्तन हो, तो ईश्वर के सिवा और किसी साक्षी की जरूरत नहीं होनी चाहिए। इसलिए यह घोषणा करना मुस्लिम नेताओं का काम है कि जबरदस्ती अथवा यांत्रिक रूप में कलमा पढ़ देने से कोई

गैर-मुस्लिम मुसलमान नहीं बन जाता।

इस पर उनमें से एक सदस्य बोले, हम तो अपनी ओर से हिन्दू नेताओं के साथ जिले के भीतरी भागों में जाकर फिर से शांति स्थापित करने को तैयार हैं। परंतु हिन्दू नेता हम पर भरोसा करने को तैयार नहीं हैं। गांधीजी ने कहा, आप इसकी चिन्ता न करें। ''आप और मैं भीतरी भागों के हर गांव और हर घर में जायेंगे और शांति तथा विश्वास पैदा करने की कोशिश करेंगे।''

यदि पूर्व बंगाल में एक ही हिन्दू हो, तो भी मैं चाहता हूं कि उसमें यह साहस हो कि वह मुसलमानों के बीच जाकर रहे और मरना ही पड़े तो वीर की भांति मरे। इससे मुसलमान भी उसकी प्रशंसा करेंगे। ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा, फिर वह कितना ही निर्दय और कठोर-हृदय क्यों न हो, जो बहादुर आदमी की प्रशंसा न करे। गुंडा उतना दुष्ट नहीं होता जितना उसे समझा जाता है। उसमें भी कुछ अच्छे गुण होते हैं।''

इससे गांधीजी को विरोधी की प्रचंड शक्ति के सामने साधारण शास्त्रों की अपेक्षा सत्याग्रह अथवा आत्मबल की श्रेष्ठता का वर्णन करने का अवसर मिल गया। दक्षिण अफ्रीका में भारतीय समाज हबशियों और गोरों के भारी बहुमत के बीच केवल मुट्ठीभर ही था। ''गोरों के पास शस्त्रास्त्र थे, हमारे पास एक भी शस्त्र नहीं था। इसलिए हमने सत्याग्रह का शस्त्र तैयार कर लिया। आज दक्षिण अफ्रीका का गोरा भारतवासी की इज्जत करता है; जूलु में श्रेष्ठ शरीर-बल के होते हुए भी गोरा उसकी इज्जत नहीं करता।''

पड़ाव का दूसरा बड़ा स्थान लक्षम था। लक्षम उस त्रिकोण का शिखर है, जिसके नोआखाली और चांदपुर आधार हैं। नोआखाली के उपद्रव कम-ज्यादा इसी क्षेत्र में सीमित रहे। यहां एक बड़ी शरणार्थी छावनी थी और गांधीजी ने रेलवे स्टेशन पर एकत्र हुए शरणार्थियों के सामने ही प्रवचन किया था। उन्होंने कहा, मैंने प्रण कर लिया है कि मैं बंगाल तब तक नहीं छोड़ूंगा जब तक कि यहां पुनः शांति स्थापित नहीं हो जायेगी और किसी अकेली हिन्दू लड़की में भी मुसलमानों के बीच आजादी से घूमने-फिरने की हिम्मत न आ जायेगी। आप मुझे सबसे बड़ी सहायता यह दे सकते हें कि आप अपने हृदयों से भय को निकाल दें। और वह कौन-सा जादू है, जो आपको निर्भय बना सकता है? वह जादू रामनाम है। ''ईश्वर सदा शुद्ध लोगों के हृदय में निवास करता है। यदि आप उससे डर कर चलें, तो पृथ्वी पर और किसी से डरने की आपको जरूरत नहीं। 'अल्लाहो अकबर' के नारे से आपको भयभीत क्यों होना चाहिए? इस्लाम का अल्लाह और हिन्दुओं का राम एक ही है—वह निर्दोषों का रक्षक है। अगर रामनाम में आपका विश्वास हो, तो आप पूर्व बंगाल को छोड़कर जाने का विचार नहीं करेंगे। खतरे का सामना करने के बजाय उससे भागना मनुष्य में, ईश्वर में और अपने आप में भी श्रद्धा का अभाव सूचित करना है। इस श्रद्धा का दिवाला पीट कर जीवित रहने से तो डूब कर मर जाना ज्यादा अच्छा है।''

गांधीजी की मंडली 7 नवंबर को तीसरे पहर चौमुहानी पहुंची। कांग्रेस अध्यक्ष की निर्भीक पत्नी सुचेता कृपलानी भीतरी भागों का दौरा करके हाल ही लौटी थीं। उन्होंने जो कुछ देखा और सुना, उससे वे निराश हो रही थीं। उनकी रिपोर्ट हृदय-विदारक थी।

एक हिन्दू नौजवान ने, जो चौमुहानी में गांधीजी से मिला, पूछा, ''मौजूदा परिस्थितियों में हम लोगों में सुरक्षितता और आत्मविश्वास कैसे पैदा कर सकते हैं?''

''बहादुरी से मरना सीख कर। सेना और पुलिस को भूल जाओ। उनका आधार झूठा है।''

''परंतु हम तो रोष से जल रहे हैं।''

''तो अपने रोष को अपने ही विरुद्ध आजामाओ।''

उस नौजवान ने जरा कटुता के साथ पूछा, ''हम किससे अपील करें? कांग्रेस से, लीग से या ब्रिटिश सरकार से?''

''इनमें से किसी से भी नहीं। अपने से ही अपील करो, और इसलिए ईश्वर से अपील करो।''

मैंने कुरान का अध्ययन किया है। इस्लाम शब्द का अर्थ ही अमन या शांति है। मुस्लिम अभिवादन 'सलाम अलैकुम' (तुम्हें शांति मिले) सबके लिए एक ही है, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो या दूसरा कोई हो। नोआखाली और टिपरा में जो घटनाएं हुई हैं, उनके लिए इस्लाम में कहीं भी इजाजत नहीं है। पूर्व बंगाल में मुसलमानों का इतना भारी बहुमत है कि उन्हें छोटे से हिन्दू अल्पसंख्यक समुदाय के रक्षक बन जाना चाहिए और हिन्दू स्त्रियों से कह देना चाहिए कि जब तक तुम यहां हो तब तक तुम पर कोई बुरी नजर डालने की हिम्मत नहीं कर सकता।''

मुलाकात का पहला गांव गोपाइरबाग थां यहां सुपारी और नारियल के पेड़ों के घने कुंजों के बीच एक मैदान में हिन्दू परिवारों के झोंपड़ों के पांच समूह थे और उनके चारों तरफ लगभग पचास गुना अधिक मुस्लिम परिवार थे। इनमें से एक धनवान पटवारी का मकान था। उसकी जायदाद की कीमत कई लाख रुपये थी। नीलम जैसे नील गगन की छाया में रेशम जैसे केले के पत्तों ने फैलकर शानदार मेहराब का रूप ले लिया था। सब ओर प्रकृति का सौन्दर्य बिखरा हुआ था। वायु में आनंदप्रद ताजगी और ठंडक थी। परंतु मानवीय दृश्य देखकर लहू जम जाता था। उपद्रवों के दिनों में एक सबसे भयंकर हत्या कांड यहां हुआ था। तेईस में से इक्कीस पुरुष क्रूरता से मार डाले गये थे।

लौटते समय गांधीजी दत्तपाड़ा में ठहरे जहां जिले का एक बड़े से बड़ा कष्ट-निवारण केन्द्र काम कर रहा था। वहां शरणार्थियों की संख्या 5 हजार से ऊपर थी। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि हर गांव में एक भला हिन्दू और एक भला मुसलमान अपने घरों को लौटने वाले शरणार्थियों की रक्षा की जिम्मेदारी ले।

पुलिस सुपरिंटेंडेंट अब्दुल्ला ने कहा कि जब तक मैं यहां हूं नोआखाली में ऐसी बातें फिर से नहीं होने दूंगा। इस पर गांधीजी बोले, अगर आप इतना आश्वासन देते हैं तो मैं मान लेता हूं कि मेरा अपना काम पूरा हो गयां आपको इतना ही याद रखना चाहिए कि अगर इस आश्वासन के बाद फिर वही पुराना किस्सा दोहराया गया, तो मैं आपके दरवाजे पर आत्महत्या करूंगा! सब लोग हंसे। परंतु गांधीजी की मंडली में से एक के कान खड़े

हो गये। वे सुचेता कृपलानी के पास गये और उनके कान में कहा कि पुलिस सुपरिंटेंडेंट गांधीजी को एक बहुत गंभीर जिम्मेदारी में फंसा रहा है। मान लीजिये कि नोआखाली में वह शांति कायम न रख सका, तो गांधीजी आमरण उपवास कर सकते हैं। ''वे लोग इस बात को समझते मालूम नहीं होते कि वे कितना बड़ा खतरा मोल ले रहे हैं। बापू को वे जानते नहीं हैं।'' सुचेता ने इशारे को समझ लिया और गांधीजी ने जो कुछ कहा उसका पूरा फलितार्थ उपस्थित लोगों को समझाया। गांधीजी मुस्करा दिये। अधिकारियों के चेहरे गंभीर हो गये।

शाम को दत्तपाड़ा में 10 हजार से अधिक हिन्दुओं और मुसलमानों की एक सभा में भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा, यह हिन्दू और मुसलमान दोनों लिए शर्म की बात है कि हिन्दुओं को इस ढंग से अपने घरों से भाग जाना पड़ा। मैं जानता हूं कि हिन्दुओं को बहुत कष्ट सहन करना पड़ा है और वे अभी भी कष्ट सहन कर रहे हैं। परंतु पुरानी बातों को याद करने से कोई फायदा नहीं होता। उन्हें जो कुछ हुआ उसके लिए क्षमा कर देना चाहिए और उसे भूल जाना चाहिए; और यदि आवश्यक आश्वासन मिल जाय तो हृदयों में साहस रख कर अपने घरों को लौट जाना चाहिए।

दूसरे दिन 10 नवंबर को गांधीजी अपनी छावनी चौमुहानी से दत्तपाड़ा ले गये, ताकि भीतरी भाग में दंगों के अधिक शिकार हुए गांवों को देखा जा सके। शाम की प्रार्थना-सभा में, जिसमें लगभग 80 प्रतिशत मुसलमान थे, गांधीजी ने ईश्वर के नाम की पवित्र करने वाली महिमा का वर्णन किया और कहा, वह पारसमणि से भी अधिक शक्तिशाली है।

11 नवंबर को गांधीजी नोआखाली, सोनाचक और खीलपाड़ा गांवों को देखने गये। ये सब रामगंज पुलिस थाने के भीतर थे। यह यात्रा कुछ तो मोटर से और कुछ नाव से हुई। नोआखाली में एक हिन्दू घराने के 8 आदमियों की हत्या हुई बतायी जाती थी। उनमें से एक 15 वर्ष का लड़का था।

जब गांधीजी अपनी गंभीर निरीक्षण यात्रा के बाद उस विनष्ट मकान से बाहर निकले, तो एक तिब्बती कुत्ता—जो हमेशा विषादपूर्ण मौन में उस स्थान के चक्कर लगाता दृष्टिगोचर होता था—आया और एक हल्की-सी आवाज से गांधीजी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने लगा। वे कुत्ते के पीछे पीछे हो लिये। वह उन्हें मानव के एक के बाद एक तीन नर-कंकालों और कई खोपड़ियों और हड्डियों के

पास ले गया, जो जमीन पर इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। उसने अपने स्वामी का और घर के अन्य कई आदमियों का दंगे के दौरान वध होते देखा था।

सोनाचक में गांधीजी एक बाड़ी देखने गये, जिसमें 100 से अधिक मकान थे। उसे लूट लिया गया था और जला दिया गया था। परिवार के मंदिर को भ्रष्ट करके नष्ट कर दिया गया था।

13 नवंबर को दत्तपाड़ा के सम्मेलन में यह चर्चा फिर शुरू हुई।

सम्मेलन में उपस्थित मुस्लिम लीग के सदस्यों को संबोधित करते हुए गांधीजी आगे कहने लगे, ''मैं यहां आपका सहयोग लेने आया हूं। आपका दल शक्तिशाली है। यहां जो घटनाएं हुई हैं उनसे इस्लाम का अच्छे से अच्छा रूप या बुरे से बुरा रूप भी प्रकट नहीं होता। वह तो इस्लाम के निषेध की बात हुई। पहला सवाल जो हमें तय करना है वह यह है कि हिन्दुओं और मुसलमानों में सहयोग हो सकता है या नहीं।

गांधीजी ने नोआखाली मिशन का पहला दौर गोमाटोली और नंदीग्राम नामक दो और गांवों की यात्रा से पूरा हुआ। विनाश का जो दृश्य नोआखाली और खीलपाड़ा में उन्होंने देखा था वही यहां भी उनके सामने आया। नंदीग्राम राखका ढेर बन गया था; लगभग 600 घर, पाठशाला का एक भवन, एक छात्रालय और एक अस्पताल जलाकर खाक कर दिये गये थे।

14 नवंबर को गांधीजी अपनी छावनी दत्तपाड़ा से काजिरखिल ले गये। यह स्थान विनाश के ठीक बीच में था। मार्ग में वे शाहपुर ठहरे, जो उपद्रवों का आरंभ-बिन्दु था।

काजिरखिल में गांधीजी की छावनी वहां के एक संपन्न हिन्दू के कुछ हद तक विनष्ट हुए घर में रखी गयी। उस समय वहां कोई रहता नहीं था। स्वयंसेवकों के एक अग्रिम दल ने उसकी सफाई करके उसे रहने लायक बना दिया था। 14, 15 और 16 नवंबर को अपने प्रार्थना प्रवचनों में गांधीजी ने कहा, अपने चारों ओर के प्राकृतिक दृश्य में मुझे अवर्णनीय शांति प्रतीत होती है, परंतु यहां के नर-नारियों के मुख-मंडल पर शांति नहीं दिखायी देती। मेरी आंखों में आंसू नहीं हैं। जो आदमी आंसू बहाता है, वह दूसरों के आंसू नहीं पोंछ सकता। परन्तु मेरा हृदय अवश्य रोता है। मैंने दक्ष्गिण अफ्रीका में वहां की सरकार के विरुद्ध 20 वर्ष तक और पिछले 30 वर्ष तक भारत में विदेशी सरकार के विरुद्ध घोर लड़ाई लड़ी है। परंतु भाई-भाई की जो लड़ाई आप लोग लड़ रहे हैं, वह मेरे अनुभव में सबसे भयंकर लड़ाई है।

काजिरखिल के दक्षिण-पूर्व में 4 मील पर दसघरिया गांव था। गांधीजी के आश्रम की एक भक्त मुसलमान महिला अम्तुस्सलाम गांधीजी के पहले वहां चली गयी थी। गांव की लगभग सारी हिन्दू स्त्रियां, जो उपद्रव के दिनों में मुसलमान बना ली गयी थीं, अपने मूल धर्म में वापस आ गयी थीं। गांधीजी के आगमन के अवसर पर वे सब मिलकर आयीं और ताल के साथ रामधुन गाकर उन्होंने गांधीजी का स्वागत किया। गांधीजी के शांति-मिशन के

प्रभाव से थोड़े ही अर्से में समस्त नोआखाली जिले में जबरदस्ती मुसलमान बनाया हुआ कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं रहा, जो अपने मूल धर्म में वापस न आ गया हो।

मधुपुर गांव की स्त्रियों के अनुरोध पर गांधीजी ने दूसरे दिन मधुपुर में स्त्रियों की सभा रखी। गांधीजी से कहा गया कि गांवों में कुछ स्त्रियां ऐसी हैं, जो आना तो चाहती हैं परंतु फौजी पहरे की मांग करती हैं। गांधीजी ने उनसे कहा, मैं ऐसी मांग का कभी समर्थन नहीं कर सकता। जो लोग स्वतंत्रता से सुरक्षा को अधिक महत्त्व देते हैं, उन्हें जीने का अधिकार नहीं है। मैं स्पष्ट शब्दों में यह कहने आया हूं कि स्त्रियों को या तो बहादुर बनना होगा या फिर मिट जाना होगा।

19 नवंबर को मुख्यमंत्री शहीद सुहरावर्दी, उनके दो साथी, संसदीय सचिव और कुछ स्थानीय मुसलमान गांधीजी से मिले।

12 नवंबर को ही वे इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि अपनी छावनी वे तोड़ देंगे, अपने तमाम साथियों की सेवाओं से अपने को वंचित कर लेंगे और उस समय तक पूर्व बंगाल में डटे रहेंगे जब तक हिन्दू और मुसलमान मेलजोल और शांति के सथ रहना न सीख लेंगे।

दो दिन बाद गांधीजी ने एक और महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ाया। यदि बंगाल के मंत्रि-मंडल द्वारा पसंद किया हुआ कोई मुस्लिम लीगी उन्हें अपने परिवार का आदमी समझ कर स्वीकार करने के लिए तैयार हो, तो वे किसी मुस्लिम परिवार में रहना चाहेंगे।

उन्होंने कहा, मैं नोआखाली में मुस्लिम आबादी के बीच पड़ा हूं। इसलिए मैं किसी हिन्दू परिवार में ठहरना पसंद नहीं करूंगा। यदि हिन्दू मुझे किसी मुस्लिम लीगी भाई के साथ अकेले रहते देखेंगे, तो इससे उनमें हिम्मत आयेगी और कदाचित उन्हें विश्वास के साथ घर लौट जाने की प्रेरणा मिलेगी। मुसलमान भी मेरे जीवन की निकट से परीक्षा कर सकेंगे।

हिन्दू धर्म के दो पहलू हैं। एक ओर ऐतिहासिक हिन्दू धर्म है, जिसमें अस्पृश्यता है, अंधविश्वास है, पत्थरों और प्रतीकों की पूजा है, पशुयज्ञ है—इत्यादि इत्यादि। दूसरी ओर गीता, उपनिषदों और पतंजलि के योगसूत्र से संबंधित हिन्दू धर्म है, जिसमें अहिंसा की, प्राणिमात्र के साथ एकता की तथा एक अन्तर्यामी, अविनाशी, निराकार और सर्वव्यापक ईश्वर की विशुद्ध उपासना की चरम सीमा है। मेरी दृष्टि में अहिंसा हिन्दू धर्म का मुख्य गौरव है।

सेवाग्राम के आश्रमवासियों को उन्होंने लिखा : ''मेरा खयाल है कि तुम लोगों को मेरे जल्दी लौट आने की या कभी भी लौटने की तमाम आशाएं छोड़ देनी चाहिए। यही बात मेरे साथियों पर भी लागू होती है। मेरे सामने भगीरथ कार्य पड़ा है। मेरी परीक्षा हो रही है। मेरी कल्पना का सत्याग्रह कमजोरों का शस्त्र है या सचमुच बलवानों का शस्त्र है? या तो मैं दूसरी बात सिद्ध कर दिखाऊंगा या इस प्रयत्न में अपने प्राण न्योछावर कर दूंगा। यही मेरी साधना है।''

20 नवंबर को गांधीजी ने अपनी छावनी भंग कर दी और वे अपने स्टेनोग्राफर और बंगाली दुभाषिया प्रोफेसर निर्मल कुमार बोस को साथ लेकर कोलम्बस की तरह अंधकारपूर्ण अज्ञात का सामना करने के लिए चल पड़े। प्रस्थान से पहले उनकी छोटी-सी मंडली ने छोटी प्रार्थना की। उनका प्रिय भजन 'वैष्णवजन तो तेने कहीए' गाया गया। अनेकों के स्वर गद्‌गद हो गये, अनेकों की आंखें आंसुओं से भीग गयीं, जब बांस की देहाती नाव गांधीजी को लेकर रामगंज के पुल की मेहराबों के नीचे से गुजरी और श्रीरामपुर की दिशा में दूर और दूर जाती विलीन हो गयी।

मेरा आदर्श तो यह है कि मैं किसी स्थानीय मुस्लिम लीगी परिवार में रहूं, परंतु... इस बीच मुसलमानों के साथ उनके गांवों में जाकर जितना भी संपर्क संभव है उतना मैं स्थापित करूंगा।

मैं किसी भी घटना के लिए तैयार हूं। 'करो या मरो' की परीक्षा यहां करनी होगी। 'करो' का अर्थ यहां यह है कि हिन्दुओं और मुसलमानों को शांति और मेलजोल से साथ-साथ रहना सीखना चाहिए। अन्यथा इस प्रयत्न में मुझे मर जाना चाहिए। यह कार्य सचमुच कठिन है। ईश्वरेच्छा बलीयसी।''

ढाई घंटे की यात्रा के बाद लगभग अपने सभी साथियों से अलग पड़े हुए महात्मा को ले जाने वाली, धीरे-धीरे चलने वाली देहाती नाव श्रीरामपुर पहुंची। यह नन्हा-सा गांव रामगंज पुलिस थाने से दो मील दूर उत्तर-पश्चिम में स्थित है। गांधीजी ने युवक जैसी चपलता के साथ नाव से बाहर कदम रखा और उनका स्वागत करने के लिए जो कुटिया तैयार की गयी थी उसमें एकांत-वास के लिए पहुंचे। उसमें प्रवेश करते ही उन्होंने तुरंत लकड़ी के पाट पर अपनी चटाई अपने ही हाथों से बिछायी। यह पाट दिन में उनके दफ्तर का और रात में बिस्तर का काम देने वाला था। गांधीजी वहां छह सप्ताह ठहरने वाले थे। उन्होंने पाट के एक सिरे पर अपने स्वभाव के अनुसार सुघड़ और व्यवस्थित ढंग से अपनी पुस्तकें और कागजात जमा दिये। इस प्रकार उनका नया जीवन आरंभ हुआ।

श्रीरामपुर में गांधीजी का नया निवास-स्थान टीन की छतवाली एक छोटी-सी कुटिया थी। वह पानी से भरे हुए धान के खेतों और ऊंचे सुपारी तथा नारियल के कुंजों के बीच एक धूप वाले खुले स्थान में खड़ी थी। बाजार और डाकघर वहां से बहुत दूर थे। चारों ओर विनाश और निर्जनता का भयंकर दृश्य फैला हुआ था। गांव के मूल 582 परिवारों में से 382 परिवार मुसलमान थे और 200 परिवार हिन्दू थे। हिन्दुओं के सिर्फ 3 परिवार अब रह गये थे, बाकी सब डर के मारे भाग गये थे। गांधीजी की बैठक के ठीक ऊपर कुटिया के भीतरी भाग में अधजला लकड़ी का काम आगजनी का सबूत दे रहा था।

गांधीजी की कठिन तपस्या के बावजूद इस परिवर्तन से उन्हें कष्ट तो हुआ। उनके पोते की बहू आभा गांधी नोआखाली तक उनके साथ गयी थी। वह उनके लिए आदर्श परिचारिका बन गयी थी।

प्रातःकाल से ही नर-नारियों का एक अनंत प्रवाह श्रीरामपुर की दिशा में बहने लगा था। दिनभर आगंतुकों का तांता लगा रहा। श्रीरामपुर पहुंचने पर जो लोग पहले-पहल गांधीजी से मिले, उनमें से एक को गांधीजी ने

कहा, ''मैं यहां के प्रत्येक निवासी के हृदय में प्रवेश करने के लिए यहां आया हूं।''

श्रीरामपुर के निवास-काल में गांधीजी के जीवन की झांकी उस ब्योरेवार डायरी से मिलती है, जो वे अचूक नियमितता के साथ रखते थे।

कभी-कभी दिन में 16 घंटे की कड़ी मेहनत हो जाती थी। इसके अलावा, कभी कभी वे अपने साथियों को भोजन-व्यवस्था को देखने के लिए भोजनालय भी चले जाते थे और पाकशास्त्र में प्रवीण होने का दावा करते हुए उन्हें सूचनाएं भी देते थे।

20 दिसंबर को गांधीजी ने श्रीरामपुर का अपना एक महीने का निवासकाल पूरा किया। 4 सप्ताह पहले उन्होंने लगभग अकेले ही प्रस्थान किया था और उनके दुर्बल शरीर को उनकी लंबी बांस की लाठी का ही सहारा था। एक अखबारी समाचार इस प्रकार था कि, ''(अब) वे यहां की दोनों कौमों के मित्र हैं। गांव के मुसलमान और हिन्दू उनसे सहायता लेने के लिए उनके पास आने में हिचकिचाते नहीं हैं। वे दोनों के मित्र, दार्शनिक और पथदर्शक हैं।...वे अपने एकाकी जीवन में सब कुछ अपने हाथ से ही करने का प्रयत्न करते हैं।...वे अपना भोजन आप बनाते हैं।...अपनी चीजों को खुद व्यवस्थित रखते हैं, अपने शरीर की मालिश स्वयं करते हैं और स्वयं ही अपने डॉक्टर भी हैं।''

एक और अवसर पर वे एक गरीब मुस्लिम परिवार में गये। उन लोगों ने शिकायत की कि उनको गुजर चलाने में कठिनाई होती है। उन्होंने शहीद सुहरावर्दी के नाम एक व्यक्तिगत पत्र में अपना हृदय उंड़ेल दिया :

आप बंगाल को दुनिया का नहीं तो कम से कम भारत का सर्वोत्तम प्रांत क्यों नहीं बनाये? प्रकृति ने बंगाल को अपनी उत्तम से उत्तम भेंट देकर बहुत बड़ी उदारता दिखायी है। उसके नारियल, सुपारी, ताड़ आदि के भव्य वृक्षों और विपुल वनस्पति को देखकर मन उन्मत्त हो जाता है। प्रकृति ने बंगाल को साहित्य, विज्ञान और संगीत के क्षेत्र में भी धुरंधर विद्वान देकर उतनी ही कृपा की है और...पंजाब की तरह आपके प्रांत में भी संतुलित आबादी है। सारे बंगाल में मुस्लिम आबादी हिन्दू आबादी से कुछ अधिक है और प्रांत के अत्यन्त समृद्ध भाग पूर्व बंगाल में मुस्लिमों का निर्णायक बहुमत है।...श्रीरामपुर के मुस्लिम भागों में जाकर जब मुझे पता लगा कि लड़के कुरान को तोते की तरह पढ़ लेते हैं, परंतु जो कुछ पढ़ते हैं, उसका अर्थ नहीं जानते, तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। वहां के मुसलमानों से मेरी बड़ी मित्रतापूर्ण और घनिष्ठ बातचीत हुई। उसमें मैंने देखा कि उन लोगों को इस दुर्दशा पर कोई दुःख या लज्जा अनुभव नहीं होती। वहां सड़कें बिलकुल नहीं है। एक जगह से दूसरी जगह पैदल जाना पड़ता है। बांस के पुल अत्यन्त सस्ते और और कलापूर्ण होते हुए भी उन्हें पार करने के लिए काफी चपलता जरूरी होती है।...बहुत से तालाबों में पानी पीने लायक नहीं है। लोगों में स्वच्छता की भावना नहीं है, इसलिए सुंदर दिखायी देने वाले तालाबों में पानी पीने के लायक नहीं है। लोगों में स्वच्छता की भावना नहीं है, इसलिए सुंदर दिखायी देने वाले तालाबों में पानी इतना गंदा रहता है कि मुझे उनमें नहाने का भी साहस नहीं होता। मैं जानता हूं कि थोड़ी सी ठोस शिक्षा से, जिसमें अक्षरज्ञान आवश्यक नहीं है, वे लोग तालाबों को अच्छी हालत में रख सकते हैं। श्री केसी ने बंगाल को पानी देने की अपनी महंगी योजना की चर्चा में मुझे घंटों लगाये रखा था। उस योजना को शायद आप कभी अमल में नहीं ला सकेंगे। परंतु स्वच्छता की शिक्षा और सादी इंजीनियरिंग कला से बंगाल को अपनी सामान्य जरूरतों के लिए जितने शुद्ध पानी की आवश्यकता होगी उतना मिल जायेगा। मैं जानता हूं कि बंगाल एक घाटे का प्रांत या गरीब प्रांत रहे, इसके लिए कोई कारण नहीं है। भगवान ने सेवा की जो शक्ति मुझे दी है उसका उपयोग करके बंगाल की—जहां संस्कृतियों के संघर्ष के लिए कोई अवकाश नहीं है—इन अत्यन्त सादी किन्तु उतनी ही महत्त्वपूर्ण समस्याएं निबटाने में मुझे बड़ा आनंद होगा।

22 नवंबर की शाम को रामगंज के डाक-बंगले में गांधीजी की उपस्थिति में दोनों कौमों के लगभग 30 प्रतिनिधियों और सरकार के प्रवक्ताओं का एक सम्मेलन हुआ। उसमें बंगाल सरकार के प्रस्तावों के आधार पर शांति-स्थापना की एक योजना अंतिम रूप से बना ली गयी और रामगंज थाने के लिए शांति-समिति का एक ढांचा तैयार कर लिया गया।

कुछ दिन बाद चंडीपुर गांव में एक सार्वजनिक सभा में यह शांति योजना लोगों के सामने रखी गयी।

24 नवंबर को तड़के ही बंगाल के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता शरतचन्द्र बोस और कलकत्ते के कुछ मित्रों की श्रीरामपुर में सरकार के शांति प्रस्तावों के बारे में गांधीजी से दो घंटे बातें हुईं।

हिन्दू नेताओं के चले जाने के बाद गांधीजी बोले, संभव है मुझे नोआखाली में कई वर्ष ठहरना पड़े। अलबत्ता, वे लोग मुझे मार डालें तो दूसरी बात है। मैं इसके लिए भी तैयार हूं। एक मित्र मंडली को, जो गांधीजी से श्रीरामपुर में महीने के अंतिम दिन मिली, उन्होंने अधिक समझाया, यदि नोआखाली में हिन्दू और मुसलमान प्रेमपूर्वक भाइयों की तरह साथ नहीं रह सकते, तो वे हिन्दुस्तान में कहीं भी साथ नहीं रह सकेंगे; और इसका अनिवार्य परिणाम होगा पाकिस्तान। ''भारत का विभाजन होगा; और यदि भारत का विभाजन हो जाता है, तो वह सदा के लिए मुसीबत में फंस जायेगा। इसलिए मैं कहता हूं कि यदि भारत को अखंड रहना है, तो हिन्दुओं और मुसलमानों को भाई-भाई की तरह प्यार से मिलजुल कर रहना चाहिए, न कि रक्षा के लिए अथवा बदले के लिए संगठित शत्रुओं की छावनी बनाकर। इसीलिए मैं अलग बस्तियां बनाकर रहने की नीति के विरुद्ध हूं। समस्या को हल करने का एक ही उपाय है और वह है अहिंसा। मैं जानता हूं कि मेरी आवाज आज अरण्य-रोदन के समान है। परंतु मैं फिर कहता हूं कि सत्य, अहिंसा, साहस और प्रेम के सिवा भारत के लिए उद्धार का और कोई मार्ग नहीं है। इस उपाय की परिणामकारिता का प्रत्यक्ष प्रमाण देने के लिए ही मैं यहां आया हूं। यदि नोआखाली हाथ से चला गया, तो भारत भी चला जायेगा।''

(महात्मा गांधी 'पूर्णाहुति' से) ❑

बिहार

जिसे तोड़ा उसे जोड़ो

❑ प्यारेलाल

''मैं यह समझने में आपकी मदद करने आया हूं कि आप किस हद तक पागल बन गये थे।'' कहा था गांधीजी ने सन् 1947 की बारह मार्च को बिहार के गांव कुमारहर में। वे नोआखली के बाद आये थे। दूसरे दिन ही सिपारा गांव में उनकी मोटर रोक कर लोगों ने उन्हें पश्चात्ताप भरा एक पत्र दिया। अपने पाप के प्रायश्चित के रूप में शिकार बने मुसलमानों के कष्ट निवारण के लिए एक थैली भी भेंट की। आज फिर यही दुहराने का प्रयास है–पागलपन, क्रूरता भी और फिर घृणित राजनीति की आग बुझ जाने पर गांव का सदभाव भी। हम अपने इस पागलपन को कब समझेंगे? –संपा.

बारह माच, 1947 को गांधीजी गांवों के लोगों तक अपनी आवाज सीधी पहुंचाने के लिए बिहार के भीतरी क्षेत्रों में जाने के लिए रवाना हुए। उन्हीं के शब्दों में कहें तो वे जो कुछ हुआ था उसका रहस्य गांवों के लोगों के चेहरों से पढ़ लेना चाहते थे।

पहला गांव, जहां गांधीजी गये, कुमारहर था। वह पटना जंक्शन से 3 मील दूर था। जब लंबी फहराती सफेद दाढ़ी वाला एक बूढ़ा उन्हें खंडहर में ले गया और उसके घर तथा उसके रिश्तेदारों के घरों को जो नुकसान पहुंचा था, वह उसने दिखाया, तो गांधीजी का हृदय रो पड़ा। पुस्तकालय और मस्जिद को भी नहीं छोड़ा था। पूजा के स्थानों को भ्रष्ट करने की बात से गांधीजी को हमेशा गहरी पीड़ा होती थी।

शाम के प्रार्थना-प्रवचन में उन्होंने कहा, आप यह दलील नहीं दे सकते कि मुसलमानों ने हिन्दू मंदिरों को भ्रष्ट किया है। क्या इससे मंदिर की रक्षा करने अथवा हिन्दू धर्म की सेवा करने में किसी भी तरह मदद मिली है? मैं स्वयं तो जितना मूर्तिपूजक हूं उतना ही मूर्तिभंजक भी हूं। और आप मानें या न मानें, यह बात आप हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों पर उतनी ही लागू होती है। मानव जाति को प्रतीक की लालसा हमेशा रहती है। क्या वास्तव में मस्जिद और गिरजे वैसे ही नहीं हैं जैसे मंदिर हैं? ईश्वर का निवास तो सब जगह है। परंतु मनुष्य कुछ विशेष स्थानों और वस्तुओं को दूसरों की अपेक्षा अधिक पवित्र मानता है। यह भावना आदर के योग्य है, यदि इससे दूसरों की वैसी ही स्वतंत्रता में कोई बाधा न पड़ती हो। मैं स्वयं तो किसी मूर्ति को छाती से लगा कर उसकी रक्षा करने में अपने प्राण दे दूंगा, परंतु अपनी पूजा की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबंध सहन नहीं करूंगा। मैं यह समझने में आपकी मदद करने आया हूं कि आप किस हद तक पागल बन गये थे।...

दूसरे दिन गांधीजी पारसा का विनष्ट गांव देखने गये। रास्ते में सिपारा गांव में ग्रामवासियों ने उनकी मोटर रोक कर एक थैली उन्हें भेंट की। उसे खोलने पर गांधीजी को सिक्कों के साथ सिपरा के ग्रामवासियों का हस्ताक्षर किया हुआ पश्चात्ताप का पत्र भी मिला :

कृपया हमारे घोर पाप के लिए हमें क्षमा करें। हमारे हाथों हमारे मुसलमान भाईयों के जान-माल की जो हानि हुई है, उसके लिए हम बड़े लज्जित हैं। अपने पाप के पश्चात्ताप और प्रायश्चित के रूप में हम उपद्रवों के शिकार बने मुसलमानों के कष्ट-निवारण के लिए यह थैली आपको भेंट करते हैं। हम आपसे फिर क्षमा मांगते हैं और यह विश्वास दिलाते हैं कि भविष्य में ऐसी बात फिर कभी नहीं होगी।

उस दिन शाम को अब्दुल्ला चक के अपने प्रार्थना-प्रवचन में गांधीजी ने कहा, मैं चाहता हूं कि प्रत्येक भारतवासी यह समझे कि भारत में कहीं भी किये गये बुरे कार्य में उसका भी भाग है—फिर वह किसी ने भी किया हो और किसी के भी विरुद्ध किया गया हो—और उसे सुधारने की जिम्मेदारी सबकी है।

खुसरूपुर में गांधीजी ने कहा, देश के सामने दो ही मार्ग हैं। एक, वार के बदले में वार करने का है; और दूसरा, विशुद्ध अहिंसा का। 1917 का चंपारण सत्याग्रह अहिंसा की शिक्षा का मार्ग था। परंतु हाल की बिहार की घटनाओं ने मुझे इस निर्णय पर पहुंचने के लिए मजबूर कर दिया है कि आपकी अहिंसा दुर्बलों की अहिंसा है। जो संकट हमारे सामने खड़ा है, उसमें ऐसी अहिंसा काम नहीं आयेगी। उसमें केवल बलवानों की अहिंसा ही कारगर सिद्ध हो सकती है। यदि बलवानों की अहिंसा का मार्ग आपके हृदय और आपकी बुद्धि को जंचता हो, तो उसकी ओर पहले कदम के तौर पर आपको सामने आकर सच्चे पश्चात्ताप के चिन्ह-स्वरूप मुसलमान भाइयों को पहुंचाये गये नुकसान की क्षतिपूर्ति करनी चाहिए। इसके विपरीत, यदि आप ईमानदारी से ऐसी अहिंसा में विश्वास न रखते हों और यह सोचते हों कि समय की चुनौती का उचित उत्तर हिंसा का मार्ग ही है, तो आपको साफ शब्दों में और सचाई के साथ ऐसा कह देना चाहिए। ''मुझे सचाई से चोट नहीं पहुंचेगी, परंतु अहिंसा के उपाय की असफलता को देखने के लिए मैं जीवित रहना पसंद नहीं करूंगा। मेरी दृष्टि में इस बात का बड़ा महत्त्व नहीं है कि अपने प्रिय सपने की सिद्धि के लिए मैं अपने प्राणों की आहुति कहां देता हूं। मेरे लिए तो भारत में सभी स्थान बराबर हैं। बिहार जो उदाहरण प्रस्तुत करेगा, उसी पर हमारे देश का भविष्य निर्भर करेगा।''

15 मार्च को फुलवारी शरीफ की मुस्लिम लीग कष्ट-निवारण समिति के कुछ

सदस्य गांधीजी की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने निराश्रितों की तरफ से कई प्रश्न गांधीजी से पूछे। गांधीजी के उत्तरों से यह प्रकट हुआ कि जिन कई प्रश्नों पर पहले उन्होंने अपनी राय देने में संकोच किया था, उनके विषय में गांवों को देखने के बाद वे निश्चित निर्णय पर पहुंच गये थे।

उनसे पूछा गया : ''आज की अस्थिर परिस्थिति में क्या आप मुसलमानों को वापस जाकर अपने गांवों में बसने की सलाह देंगे?''

गांधीजी ने उत्तर दिया, ''यदि आपके भीतर साहस हो और ईश्वर में आवश्यक श्रद्धा हो, तो मैं आपसे कहूंगा कि आप वापस चले जाइए। मैं यह स्वीकार करता हूं कि अगर मेरे साथ ऐसी ही बातें होतीं, तो शायद मैं स्वयं वापस न जा पाता। मृतकों का विचार मुझे सताता। परंतु मेरी यह आकांक्षा जरूर है कि ईश्वर पर भरोसा करके मैं उन लोगों के बीच भी रह सकूं, जो मेरे घोर शत्रु बन गये हैं।''...

बर्बरता के कृत्यों के लिए जो लोग जिम्मेदार थे, उनके बारे में गांधीजी की यह राय थी कि उन्हें कठोर दंड मिलना चाहिए। बिहार सरकार ने सजा न देने की कसम नहीं खाई थी। ''जो सरकार अपराध का दंड देने में विश्वास करती है और फिर भी जाने हुए अपराधियों को दंड नहीं देती, वह सरकार कहलाने के योग्य ही नहीं है।

''बहुसंख्यक कौम ने पागल बनकर अल्पसंख्यक समुदाय की जो ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक हानि की है, उसकी क्षतिपूर्ति कैसे हो सकेगी?''

''ऐसी हानि की पूर्ति नहीं की जा सकती। बर्बरता के ऐसे कृत्य उस समय तक होते ही रहेंगे जब तक हम सहिष्णु बनकर यह बात समझ नहीं लें कि सभी धर्म ईश्वर के पास पहुंचाते हैं। जब तक यह परिवर्तन नहीं हो जाता तब तक ऐसी बर्बरता को और उससे होने वाली अपूरणीय हानि को रोकना असंभव है।''

''उन अधिकारियों के साथ क्या व्यवहार किया जाये, जिन्होंने दंगाइयों का खुला साथ दिया अथवा दूसरी तरह से पक्षपात का दोष किया था?''

''जिन अधिकारियों के विरुद्ध ऐसे आरोप सिद्ध किये जा सकते हों, उनके लिए सरकार में कोई स्थान नहीं हो सकता।''

अंतिम प्रश्न था : ''जैसी दुखद घटनाएं हाल में हुई हैं, उनकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए आप क्या कदम उठाना चाहते हैं?''

गांधीजी ने उत्तर दिया, ''मैं मंत्रियों से ऐसे कानून बनाने के लिए कहूंगा, जिनसे किसी स्थान-विशेष के मुसलमानों की सुरक्षा की जिम्मेदारी उस स्थान के हिन्दुओं पर डाली जाये। यह बात उस जगह के लिए है, जहां मुसलमानों की संख्या थोड़ी हो। परंतु जरूरत इस बात की है कि दोनों के दिल फिर से मिलें। यहां के मुसलमानों से मैं वही बात कहूंगा, जो मैंने नोआखाली के हिन्दुओं से कही थी : ईश्वर के डर के सिवा दूसरा सारा डर आपको छोड़ देना चाहिए।

मसौढ़ी में गांधीजी ज्यादा गहरे पानी में उतरे। उस क्षेत्र में दंगों के दिनों में एक अत्यंत भयंकर और करुण घटना हुई थी। गांव के गांव साफ कर दिये गये थे। लगभग प्रत्येक घर धराशायी कर दिया गया था। फिर भी वहां और बिहार में अन्यत्र भी हिन्दू और मुसलमान किसी समय मित्र थे। अधिकांश संस्थाएं, जैसे स्थानीय सहकारी बैंक, हाईस्कूल, मंदिर तथा मस्जिद तक हिन्दू-मुसलमानों के सम्मिलित प्रयत्नों से स्थापित हुए और बने थे। गांधीजी ने मसौढ़ी में अपनी पहली प्रार्थना-सभा में भाषण दिया। उसमें 30 से 40 हजार पुरुष और स्त्रियां उपस्थित थीं। कुरान की आयतें संपूर्ण शांति से सुनी गई। क्या ये वही लोग हो सकते थे, जिन्होंने पागलपन के ये सारे काम किये थे?

गांधीजी ने अपने प्रार्थना-प्रवचन में कहा, मुझे दी गयी एक रिपोर्ट में यह कहा गया है कि मसौढ़ी में हमला मुसलमानों की तरफ से शुरू किया गया था। उत्पात वास्तव में कैसे आरंभ हुआ, इससे मेरा कोई मतलब नहीं। मुझे तो यह जानने से मतलब है कि जो हिन्दू इतने भारी बहुमत में हैं, वे निरपराध लोगों की हत्या करने की नीचता कैसे कर सके? मुसलमानों ने यह शिकायत भी की है कि सरकार उनके कष्टों पर ध्यान नहीं देती। परंतु मैं यहां न्याय करने नहीं आया हूं। मेरा काम अपराधियों पर मुकदमा चलाने वाले सरकारी वकील का या न्यायाधीश का नहीं है। मेरा तो एक सुधारक और मानवतावादी का नम्र कार्य है। मैं अपराधियों से उनकी मूर्खता के लिए पश्चात्ताप कराने आया हूं। सरकार पहले ही घोषणा कर चुकी है कि वह इन भयंकर दंगों के कारणों की जांच के लिए और भविष्य में ऐसी बातें न होने के उपाय ढूंढ़ने के लिए एक निष्पक्ष कमीशन नियुक्त करेगी। कमीशन सरकार को यह भी सलाह देगा कि पीड़ितों को क्या मुआवजा दिया जाय। जिन्हें शिकायत करनी हो, वे कमीशन के सामने अपनी शिकायतें और सबूत रखें।

प्रार्थना-प्रवचन के बाद गांधीजी मुस्लिम कष्ट-निवारण कोष के लिए रुपया इकट्ठा करने को ठहर गये। इस पर सभा में हड़बड़ी मच गयी, क्योंकि हर आदमी अपना धेला-पैसा महात्माजी के हाथ मेंपहले रखने के लिए आगे बढ़ने लगा। जब वे चंदा लेने के लिए हाथ बढ़ाकर आगे झुके, तो उन्होंने लोगों के चेहरों पर भावना का कंपन पढ़ लिया। यह इसका असंदिग्ध प्रमाण था कि अंत में उनके हृदयों में पश्चात्ताप की भावना पैदा हुई थी।

दूसरे दिन गांधीजी मसौढ़ी खास के बरबाद हुए घरों को देखने गये। जहां कहीं वे जाते और जिस रास्ते से भी गुजरते, वहां एक बड़ी भीड़ हमेशा उन्हें घेर लेती थी। उससे जो धूल उड़ती थी, उसमें होकर निकलना टेढ़ी खीर थी।...गोरैयाखारी में उस दिन शाम को उनका हृदय इतना भरा हुआ था कि वे एक शब्द भी नहीं बोल सके। इसके बजाय उन्होंने प्रार्थना से पहले के समय का उपयोग सभा से महापाप के प्रायश्चित के रूप में पीड़ित

मुसलमानों के लिए चंदा इकट्ठा करने में किया।

जब प्रायश्चित उपयुक्त कार्यों की मांग करता हो तब शौक मनाना एक विलास हो जाता है। अपने प्रार्थना-प्रवचन में गांधीजी ने श्रोताओं से कहा, आप लोग और कुछ न कर सकें, तो सच्चे प्रायश्चित के चिन्ह-स्वरूप हिन्दी के सिवा उर्दू भाषा और उर्दू लिपि सीख लीजिए। इससे मुसलमानों के साथ आपका संपर्क बढ़ेगा और वह सहानुभूति का ठोस और समुचित प्रमाण भी होगा। आपको अपने पड़ोस के बरबाद हुए गांवों को फिर से बसाने के लिए भरसक कोशिश करनी चाहिए। आपको मुसलमानों से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे पिछली बातों को भूल जायें और उनकी रक्षा तथा सुरक्षा का पूरा आश्वासन देकर उनसे अपने घरों में लौट आने के लिए अनुनय-विनय करना चाहिए; स्वयंसेवकों को ईश्वर के सच्चे सेवक बन जाना चाहिए और जो लोग अपराधी हैं उन्हें मन में कोई दुराव न रखकर अपने अपराध स्वीकार कर लेना चाहिए तथा उनके लिए उचित प्रायश्चित करना चाहिए।

दो दिन बीर गांव में ठहर कर 20 मार्च को गांधीजी फिर से मसौढ़ी लौटे। बीर से वे आसपास के कई गांव देखने गये। अपने प्रार्थना-प्रवचन में उन्होंने कहा, मैंने ऐसी बरबादी देखी है कि रो पड़ने के डर से उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। कोई भी वहां जाकर स्वयं उस बरबादी को देख सकता है। यह आपके लिए कलंक की बात है कि रक्तपात के महीनों बाद भी अभी तक मलबा हटाया नहीं गया है और परित्यक्त मुस्लिम घरों से माल-सामान रोज चुराया जा रहा है। आपने जो कुछ नष्ट किया है उसे फिर से बना देना आपका धर्म है। आपने जब अपराध किया है तो प्रायश्चित भी आपको ही करना होगा। मुसलमानों की क्षतिपूर्ति करने में प्रत्येक हिन्दू को भाग लेना चाहिए। जो लोग तैयार हों वे अपना नाम लिखा दें, ताकि इस काम के लिए अलग-अलग स्थानों में स्वयंसेवक दल संगठित किये जा सकें। जो मकान बरबाद कर दिये गये हैं, उनकी जगह आपको ऐसे सुंदर मकान बनाने चाहिए कि देखने वाले को शंका भी न हो सके कि यहां कभी कुछ हुआ था! अगर आप अपना कर्त्तव्य पालन करेंगे, तो मुसलमान पिछली बातें भूलकर अपने घरों को लौट आयेंगे और इसकी खुशबू सारे भारत में फैल जायेगी।

मसौढ़ी के पीड़ित क्षेत्र में किये गये 6 दिन के दौरे के संस्मरणों का सार 22 मार्च को पटना की प्रार्थना-सभा में सुनाते हुए गांधीजी बोले : जिन भयंकर घटनाओं के अवशेष मैंने देखे, वे तो ऐसे हैं कि मनुष्य मानव-जाति से लगभग निराश हो जाता है। परंतु मैंने नवयुग के उदय के असंदिग्ध चित्र भी देखे हैं। जो कुछ हुआ उस पर ग्रामवासियों को केवल सच्चा पछतावा ही नहीं है, बल्कि मैं जैसा बताऊं वैसा प्रायश्चित करने को भी वे तैयार हैं। उन्होंने मुसलमानों के कष्ट-निवारण के लिए यथाशक्ति उदारता के साथ चंदा दिया है। रास्ते में उन्होंने जगह-जगह मेरी मोटर को रोक कर थैलियां भेंट की हैं। उन्होंने मुझे पत्र लिखकर मुसलमानों को फिर से बसाने में सहायता देने की तैयारी और इच्छा व्यक्ति की है। कई स्थानों पर खुद मुसलमानों ने आकर मुझसे कहा कि वहां दुर्घटनाएं न होने का कारण वहां के हिन्दुओं की बहादुरी थी। दंगों के सिलसिले में जिन लोगों की खोज की जा रही थी, ऐसे बहुत से लोगों ने आकर अधिकारियों के सामने आत्म-समर्पण कर दिया है। मुझे आशा है कि और अधिक लोग आगे आकर अपना अपराध स्वीकार करेंगे। अपराध स्वीकार करने से न केवल उनके साहस के लिए आदर पैदा होगा, बल्कि सारे प्रांत की प्रतिष्ठा भी अंत में बढ़ेगी।

दूसरे दिन गांधीजी मुस्लिम लीग की कार्यसमिति के एक सदस्य से मिले, जिसने कहा कि उनके बिहार आने से मुसलमानों में फिर विश्वास पैदा हो गया है।

परंतु सारे भारत की राजनीति में बहुत बुरी सड़ांध फैल गयी थी। एक जगह रोग के लक्षण शांत होते थे कि तुरंत दूसरी जगह रोग अधिक जोरों से फूट पड़ता था। सरदार पटेल ने गांधीजी को लिखा कि सैनिक कार्रवाई के जरिए पंजाब में एक तरह की शांति स्थापित हो गयी है। गांधीजी को श्मशान की शांति में कोई शांति दिखाई नहीं देती थी। उनकी पैनी दृष्टि ऊपरी सतह के नीचे गहरे उतर कर और वर्तमान को भेदकर देख सकती थी। 1857 का सिपाही-विद्रोह अधिक सशक्त हथियारों द्वारा दबा दिया गया था। ऊपर-ऊपर से शांति हो गयी थी। परंतु थोपे हुए राज्य के विरुद्ध द्वेष भीतर ही भीतर गहरा होता गया था और अंग्रेजों ने उस समय जो बीज बोए थे, उसके फल वे अब तक काट रहे थे। यदि पंजाब को ज्यादा अच्छे हथियारों के बल पर दबाया गया हो, तो हिन्दू-मुसलमानों के बीच अधिक लड़ाई और अधिक कटुता के बीज हमेशा के लिए बो दिये गये समझना चाहिए।

गांधीजी के पास जो सूचनाएं पहुंची थी, उनसे यह मालूम होता था कि पंजाब के लोग चुपके-चुपके खुली और अधिक भयंकर लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं। हथियार इकट्ठे किये जा रहे थे। गांधीजी ने भविष्यवाणी के रूप में चेतावनी दी : यदि यही हाल रहा तो मुझे सूरज की तरह साफ दिखायी देता है कि अमुक स्थिति पर पहुचने के बाद परिस्थिति को नियंत्रण में रखना फौज के लिए भी असंभव हो जायेगा। सच्ची शांति तभी स्थापित होगी जब दोनों नहीं तो कम से कम एक पक्ष अहिंसा की सच्ची बहादुरी को अपना लेगा। परिस्थिति का मेरा अध्ययन यह बताता है कि बिहार ने इसे समझ लिया है कि स्त्रियों और बच्चों को मारने में कोई बहादुरी नहीं है। वह निरी कायरता है। यदि बिहार शांत शक्ति की सच्ची वीरता का परिचय दे सके और इस प्रकार भारत और संसार को मार्ग दिखा सके, तो वह बहुत बड़ी बात होगी। (महात्मा गांधी 'पूर्णाहुति', खंड-2) ❑

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा'

पद-यात्रा

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। –सं.

सोराबजी कानून की पढ़ाई करके लौटने के बाद भारतीयों के हितों के खिलाफ बनने वाले कानूनों का विरोध करता, वह उनके लिए काम करने को तत्पर था। उस पर मोहनदास का विश्वास था। लेकिन कुछ ही महीने बाद ही उसके फेफड़ों में संक्रमण हुआ और वह मर गया। यह किसी ने कभी सोचा भी नहीं था कि ऐसा हो जायेगा। यह अजब संयोग था कि छगनलाल के लौट आने के बाद, सोराबजी भारतीय समाज की अपेक्षाओं को पूरा करने से पहले विदा हो गये। एक और भारतीय नौजवान था जिसने सोराबजी से भी अधिक अंक प्राप्त किये थे। लेकिन वह

उस प्रतियोगिता के जज का बेटा था। वह अपने पिता के आदर्शवाद का दूसरी बार शिकार हुआ था।

8 मई, 1911 की घटना है। कस्तूरबा जब सवेरे सोकर उठी तो उसे अपने सिरहाने रखी चिट्ठी मिली। वह हरिलाल का पत्र बा और बापू के नाम था। उसमें लिखा था, मैं बापू से अपने संबंध जीवन-भर के लिए तोड़ रहा हूं। बा को आश्चर्य न होकर दुःख हुआ था। वह अंदर तक आहत हो उठी थी। उसके मन में एक ही बात आयी कि जब मां-बाप बच्चों के हित से अपने सम्मान को बड़ा करके देखते हैं तो बच्चों का अहं अनजाने ही और बड़ा हो जाता है। कई दिन तक बा बेटे के लौट आने के पूर्वाभास में जीती रही। सवाल था, कहां गया? कहां ढूंढ़े? एक दिन हरि के किसी मित्र ने बताया कि वह मोजम्बीक के पास डेलागोआ की खाड़ी में भारत जाने वाले जहाज का इन्तजार कर रहा था। कैलनबैक ने बापू से कहा कि वह जाकर उसे समझाकर-बुझाकर ले आयेगा। बापू ने कोई जवाब नहीं दिया।

पराकाष्ठा तब हुई जब हरिलाल, 15 मई, 1911 को, रात-भर खेतों और बगीचों में भटकता हुआ, थका व क्लांत स्वयं लौट आया। बापू ने पूछा, 'बिना पूछे कहां चले गये थे?'

'किससे कहता, आप तो मुझे दिल से निकाल चुके हैं। बा से कहकर उन्हें दुःखी करने का कोई मतलब नहीं था।'

'तुमसे किसने कहा मैं तुम्हें अपने दिल से निकाल चुका हूं?'

'क्या यह भी मुझे बताना पड़ेगा? निर्णायक तो आप ही थे। जिसे पिछली बार लंदन पढ़ने भेजा वह आपका भतीजा था। इस बार जो नंबर एक था उसे न भेजकर आपने सोराबजी को चुना, क्या यह अपने आप में मेरी बात का प्रमाण नहीं है?'

'क्या पढ़ाई ही सब कुछ है?'

'यह अपने आप से पूछिए, जहां आज हैं, वहां क्या बिना बैरिस्ट्री पढ़े पहुंच सकते थे?'

'क्या मतलब?'

'बापू, मैं भी चाहता था कि मैं भी आपके पद-चिन्हों पर चलूं। लेकिन आपने मुझे इस योग्य नहीं समझा।'

'मैं चाहता हूं कि तुम सत्याग्रह में मेरा साथ दो।'

'मैं सबसे कम उम्र में सत्याग्रह करके, सबसे ज्यादा बार जेल गया हूं। लंदन से लौटने के बाद क्या घर में बैठ जाता?'

'समाज सेवा में रहने वालों को घर वालों के मोह और इन आकर्षणों से बचना चाहिए। यही उनकी परीक्षा होती है।'

'मैं भी परीक्षा ही दे रहा था।'

'परीक्षक के विवेक को चुनौती देना परीक्षार्थी के अधिकार में नहीं आता।'

'तो क्या सबसे अधिक अंक पाने वाले परीक्षार्थी को उसके जायज अधिकार से वंचित कर देना परीक्षक के अधिकार में है?'

'मैं तुम्हारा पिता भी हूं?'

'क्या यही मेरा दुर्भाग्य है?'

'तुम ऐसा समझते हो!'

'मुझे समझाया जा रहा है।'

दरवाजा खुला। कस्तूरबा का गला भरभराया हुआ था, 'तुम बाप-बेटे क्यों झगड़ रहे हो, मुझे भी तो बताओ।' दोनों चुप रहे। वह बोली, 'हरि, पता नहीं कहां-कहां धक्के खाकर इतने दिन बाद घर लौटा, तुम...।'

'मेरा भी बेटा है...।'

'मैं यही जानने आया हूं...कौन कितना पिता है और कौन कितना बेटा...?' हरि ने व्यंग्यात्मक ढंग में कहा।

'बस, बहुत हो चुका...' कस्तूरबा डांटने के अंदाज में बोली, 'पिता से इस तरह बात की जाती है?'

'बा, मैं यही जानना चाहता हूं, कोई पिता अपने आदर्शों के लिए अपने बेटे के सपनों को इस तरह रौंदता है?'

'आदर्श ही सपनों को वास्तविकता में बदलते हैं। तुम हो चाहे सोच सकते हो। जब तुम शांत हो जाओ तो मुझे बता देना, तुम क्या चाहते हो।'

अब चाहने को बचा क्या है?' कहकर हरिलाल बाहर चला गया। बाहर सन्नाटा था। दूर झरने के पास दो-चार लोग नजर आ रहे थे। हवा में गर्मी आती जा रही थी।

दो दिन बाद कस्तूरबा ने देखा, बाप-बेटे हरिलाल के सामान के साथ फार्म से बाहर जा रहे हैं। दोनों में से किसी ने कस्तूरबा को कुछ नहीं बताया था। वह बड़बड़ाती अंदर चली गयी, 'पुरुष सब एक से होते हैं, पति हो या बेटा।'

बाद में पता चला कि मोहनदास हरि को भारत जाने के लिए जोहान्सबर्ग रेलरोड स्टेशन विदा करने गये हैं। वह अब वहीं रहकर पढ़ेगा। उसके अंदर एक सन्नाटा उतर गया, बोली कुछ नहीं। एक ही सवाल था अगर मिलकर जाता तो क्या बा उसे रोक लेती? कस्तूरबा ने अपने को समझाया जब बच्चा निराश हो जाता है तो अपना भविष्य अपने आप तलाश करता है। शायद हरि भी वही करने गया है। वह अपने पति को इस घटना के लिए माफ करने का रास्ता खोज रही थी। उसे हरिलाल का एक वाक्य याद रहा था, 'बा हम सब बापू के लिए हैं। क्या वे किसी के लिए नहीं?' वह जानती थी कि वह उसका दर्द है, उसके बापू का कोई दूसरा होगा...दोनों के बीच वह खड़ी है। दोनों का दर्द अपने आंचल में लिये। साथ रहने के लिए या तो इन सबको भुलाना होगा या सबके साथ उसे भी जीना होगा।

कस्तूरबा के साथ एक के बाद एक घटनाएं घट रही थीं। सबसे बड़ी चिन्ता थी हरि अकेला अपना भविष्य खोजने निकल गया था। सबसे बड़ी तकलीफ थी कि अपने बापू से नाता तोड़कर और मन में कड़वाहट लेकर गया था। नाते टूटते हैं तो टूटे धागों की तरह हर जगह बिखर जाते हैं। वह मन ही मन यही प्रार्थना कर रही थी कि भारत जाकर उसे सुख-शांति मिले। उसकी समझ में आ जाये कि उसके बापू उसमें निराशा और अकर्मण्यता न भकर सक्रियता का संचार करना चाहते हैं। भले ही उनका तरीका उसके सोच से भिन्न हो। हरि का इस तरह जाना बा के लिए ही चिन्ता का कारण नहीं था, तीनों बच्चे भी सन्न रह गये थे। कस्तूर मोहनदास की नाराजगी उस समय भुगत चुकी थी जब लड़कियों की आंखों में भविष्य के सपने तैरते होते हैं। उस समय एक साल का घर निकाला देकर पीहर भेज दिया था।

...क्रमशः अगले अंक में

चम्पारण सत्याग्रह का राष्ट्रव्यापी प्रभाव

❑ ब्रजकिशोर सिंह

महात्मा गांधी का चम्पारण आंदोलन भारत के इतिहास में एक क्रांतिकारी मील का पत्थर साबित हुआ। आज से ठीक 100 वर्ष पूर्व 1917 के तुलना में अधिक बलशाली शक्तियों से लोहा लेने के लिए महात्मा गांधी ने भारतीय राजनीति को एक अनूठे तरीके से परिचित करवाया।

गांधीजी का आजादी के लड़ाई के तरीके को देखते हैं तो ऐसा स्पष्ट दिखायी देता है। लेकिन वह जो भी करते थे या जो भी लिखते थे, उस सब में अंग्रेज शासन के विरुद्ध उठ रही आवाज का ध्यान रखते थे। उनके सत्याग्रह हर समय नहीं चलते रहते थे। जहां उचित समझते थे या अनुकूल परिस्थिति देखते तो आंदोलन करते थे। लेकिन एक आंदोलन और दूसरे आंदोलन के बीच जो समय मिलता था, उसमें रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा आजादी के बाद राष्ट्र-निर्माण के लिए अहिंसक सेना का निर्माण करते थे। इसका परिणाम था कि आजादी की लड़ाई के दौरान और आजादी के बाद शुरुआती दिनों में सत्ता के बाहर रचनात्मक कार्यक्रमों का एक बड़ा वर्ग उपलब्ध था और सक्रिय था। चम्पारण जाने का निर्णय करने में उन्हें समय लगा। लेकिन जब उन्हें लगा कि चम्पारण के किसानों की समस्या के हल में आजादी की लड़ाई के लिए एक बड़ा आंदोलन छिपा हुआ है तो तुरंत चम्पारण के लिए निकल पड़े। चम्पारण में नील की खेती के कारण जो अत्याचार हो रहा था, उसका समाधान तो ढूंढ़ना ही था परंतु उसी में आजादी के लिए एक बड़ा समाधान भी ढूंढ़ना था, आंदोलन भी खड़ा हुआ। गांधीजी के लिए देश की आजादी तो महत्त्वपूर्ण थी ही, आजादी के बाद देश का निर्माण उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण था। इसलिए जब देश आजाद हो गया उसके बाद शहीद होने से एक दिन पहले 29 जनवरी 1948 को गांधीजी ने कहा था, देश को राजनैतिक आजादी मिल गयी। लेकिन इस देश के सात लाख गांव को सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी के लिए प्रयास करना अभी बाकी है। सभी जानते हैं कि आजादी प्राप्त करना ही आजादी की लड़ाई का उद्देश्य होता तो आजादी तो प्राप्त हो गयी, फिर उसके बाद गांधीजी भी सत्ता का आनंद ले रहे होते, लेकिन उन्होंने आजादी की लड़ाई के दौरान भी और आजादी के बाद भी सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी को राजनैतिक आजादी से कम महत्त्व नहीं दिया।

इसलिए गांधीजी ने हमेशा देश निर्माण के लिए प्रयासों को रेखांकित किया। चम्पारण आंदोलन को भी इसी संदर्भ में देखना चाहिए। इसीलिए किसानों की मदद करने के साथ ही उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ा काम किया, जिसका सीधा-साधा असर किसानों को राहत पहुंचाया, जिसके फलस्वरूप किसानों को अपनी समस्याओं के लिए आत्मनिर्भर बनाया।

चम्पारण सत्याग्रही राजकुमार शुक्ल के लिए किसानों को निलहों से मुक्ति का एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। लेकिन गांधीजी की दूरदृष्टि और रचनातमक कार्यों के फलस्वरूप चम्पारण सत्याग्रह आजादी के लिए चलाये जा रहे राष्ट्रीय आंदोलन की ओर ध्यान आकृष्ट करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन भी बना। चम्पारण सत्याग्रह के परिणाम देखने पर गांधी के लिए निर्णय करने में इतना समय क्यों लगाया, इस सवाल के उत्तर का सहज जवाब मिल जाता है। उन्होंने भारतवर्ष में किये जाने वाले हर प्रयास को देश के आजादी के आंदोलन का बड़ा कदम बनाया और आजादी के लिए हर कदम देश के निर्माण का आधार बनाया। उन्हीं उद्देश्यों को प्राप्ति का उन्होंने जन-जागृति पैदा करने के लिए ही चम्पारण में किसानों को केवल नील की खेती से मुक्ति न मिले, बल्कि उनके विकास के लिए उन्होंने शिक्षा का बहुत बड़ा अभियान शुरू किया। बिना किसी सरकारी मदद से बल्कि सरकार के विरोध के बावजूद उन्होंने कस्तूरबा और देव उनके द्वारा तैयार की गयी संगठन के सदस्यों के माध्यम से स्कूल तथा विकास का कार्य इस क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर शुरू किये।

गांधी के कामों की यही सबसे बड़ी खूबी थी कि वह किसी भी विचार को समग्रता की दृष्टि से देखते थे और हर प्रयास में केवल नकारात्मक ही नहीं सोचते थे बल्कि सकारात्मक परिणामों के लिए प्रयास करते थे।

इसलिए चम्पारण सत्याग्रह देश की आजादी के लिए किये जा रहे प्रयासों को नई दिशा थी। उन्होंने सुदूर क्षेत्र में होने वाले शोषण को राष्ट्रीय आंदोलन का वही आधार बनाया। इसी के फलस्वरूप चम्पारण सत्याग्रह का राष्ट्रवादी प्रभाव पड़ा। गांधीजी ने सिद्ध कर दिया कि कोई काम बड़ा न कोई छोटा होता है। जब नीयत और नीति साफ होती है, दृष्टि स्पष्ट रहती चाहिए, माध्यम सही रहना है, परिणाम अवश्य ही अनुकूल आता है। ❑

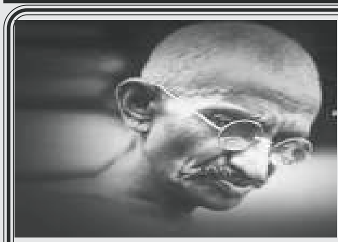

रविन्द्रनाथ की दो कविताएं

रविन्द्रनाथ की दो कविताएं गांधीजी को बड़ी प्यारी थीं। एक तो *'एकला चलो रे!'* उनकी यह कविता नोआखली-यात्रा में रास्ते का हमदर्द बन गयी थी। दूसरी कविता जो गांधी को प्रिय थी वह है–*'जीवन जखन शुकाये जाय'*, प्रस्तुत है। –संपा.

(एक)

एकला चलो रे!

जदि तोर डाक शुने केऊना आशे
तबे एकला चलो रे!
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे!

जदि केओ कथा न कय, ओरे ओरे ओ अभागा,
जदि शबाई थाके मुख फिराये शबाई करे भय
तबे परान खुले
ओ, तुई मुख-फूटे तोर मनेर कथा एकला बलो रे!
जदि तोर डाक शुने केऊ ना आशे तोबे एकला चलो रे!

जदि सबाई फिरे जाय ओरे ओरे ओ अभागा,
सबाई फिरे जाय
जदि गहन पथे जाबार काले केऊ फिरे ना जाय
तबे पथेर-कांटा
ओ तुई रक्त-माखा चरण तले एकला दलो रे
जदि आलो ना घरे ओरे ओरे ओ अभागा,
आलो ना घरे
जदि झड़ बांध ले आंधार राते दुआर देय घरे
तबे बज्रानले
आपन बुकेर पांजर जालिए लिए एकला जलो रे
जदि तोर डाक शुने केऊ ना आशे तोबे एकला चलो रे!

(दो)

जीवन जखन शुकाये जाय

जीवन जखन शुकाये जाय
करुणा धाराय एसो।
सकल माधुरी लुकाय जाय
गीत सुधारसे एसो।

कर्म जखन प्रबल आकार
गरजि उठिया ढाके चारि धार
हृदय प्रांते हे नीरव नाथ
शांत चरणे एसो।

आपनोर जबे करिया कृपण
कोणे पड़े थाके दीन हीन मन
दुयार खुलिया हे उदार नाथ
राज समारोहे एसो।

वासना जनख विपुल घुलाय
अंध करिया अबोधे भुलाय
ओहे पवित्र ओहे अभिन्द्र
रूद्र आलोके एसो।

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।